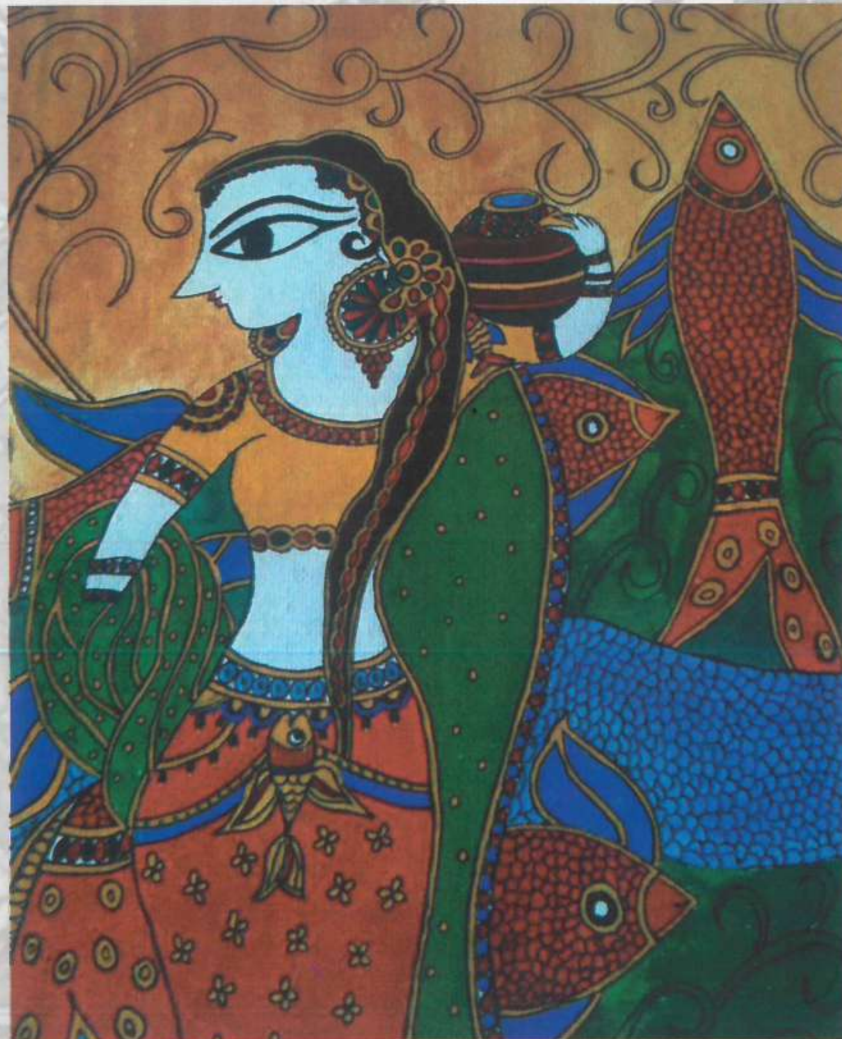
मिथिला लोकचित्र

कृष्ण कुमार कश्यप | श्रीमती शशिबाला



मिथिला लोकचित्र



भारत–देश और लोग

मिथिला लोकचित्र

कृष्ण कुमार कश्यप
श्रीमती शशिबाला





nbt.india
एकः सूते सकलम्
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
NATIONAL BOOK TRUST, INDIA

ISBN 978-81-237-7356-8

पहला संस्करण : 2015
दूसरी आवृत्ति : 2019 *(शक 1941)*

Mithila Lokchitra *(Hindi)*

[redacted]
निदेशक, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज-II
वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070 द्वारा प्रकाशित
Website: www.nbtindia.gov.in

अनुक्रम

भूमिका

हमारे देश के विभिन्न भागों में, वहाँ की सांस्कृतिक धारा के अनुसार, लोकचित्र की अपनी परंपराएँ हैं। कहीं यह रंगोली, कहीं कोलम, कहीं पटचित्र, तालपत्र तो कहीं कलमकारी और किसी अन्य नाम से जाना जाता है। इन सभी लोकचित्रों का ज्ञान एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होता रहता है और इनका प्रशिक्षण भी अलिखित परंपरागत विधि से ही होता आया है, किंतु ये लोकचित्र वस्तुतः लोकविद्या के अक्षय भंडार हैं। सन् 1970 ईस्वी से पहले बाहरी दुनिया के लोग मिथिला की चित्रकला से अनभिज्ञ थे, किंतु उस वर्ष भारत सरकार ने इसे **'लोकचित्र'** के रूप में मान्यता प्रदान की और जापान में उस वर्ष आयोजित अंतर्राष्ट्रीय कला-प्रदर्शनी में भी इन चित्रों को सम्मिलित करवाया। तब से लोगों ने इस चित्रकला को जाना और सम्मान दिया, किंतु इस कला का प्रशिक्षण भी अलिखित परंपरागत विधि पर ही आधारित रहा। आज के दिनों में ये चित्र व्यावसायिक कला-बाजारों में बहुत जाना-माना नाम है और इसकी रचना, खास कर आकृतिक चित्रों की रचना, पुरुष लोग भी करने लगे हैं किंतु मूल रूप से इस कला-शैली के असली कलाकार स्त्रियाँ ही हैं; शुभ अवसरों पर बनने वाले अरिपन का आलेखन तो आज भी केवल स्त्रियाँ ही करती हैं।

मैंने अपने शैशव काल में ही निश्चित कर लिया था कि अपना जीवन वंचित लोगों को शिक्षित करने में लगाउँगा। आगे चल कर मुझे लगा कि बिहार की स्त्रियों का बहुत बड़ा भाग निरक्षर है और उनकी सामाजिक दशा अच्छी नहीं है। तब तक मिथिला लोकचित्र प्रकाश में आ चुका था। मैंने इस चित्रशैली के साथ ही दलित स्त्रियों के शरीर पर बनने वाले 'गोदना चित्र' की बारीकियों का अध्ययन किया और दोनों चित्रों का परस्पर विलयन करके चित्र-शिक्षा की एक विधि विकसित की। अंततः सन् 1980 आते-आते कला-शिक्षा की हस्तलिखित तीन पुस्तकें तैयार हुई जिसे लेकर मैंने अपनी पत्नी श्रीमती शिवा कश्यप के साथ मिल कर, केवल बालिकाओं और स्त्रियों के लिए, भारती विकास मंच नाम से एक निःशुल्क कला-विद्यालय प्रारंभ किया। इस विद्यालय की छात्रा जो कुछ सीखती थी उतने ज्ञान

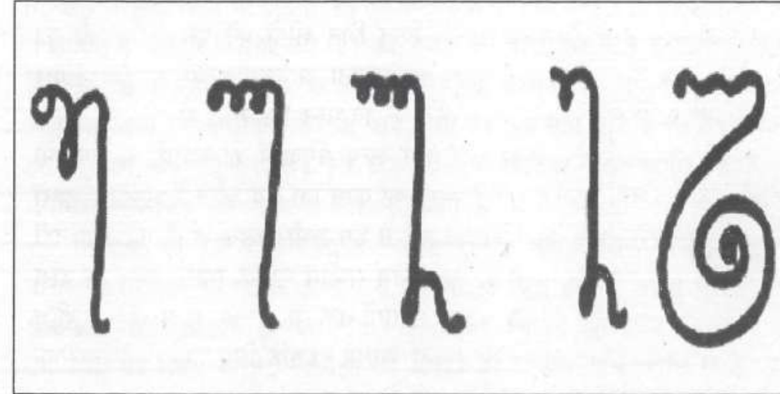
से ही कपड़े पर कोई न कोई सामान बनाने के लिए चित्रांकन करती थी जिसे महानगरों में प्रदर्शनी लगा कर बेच दिया जाता था और छात्राओं को उनका हिस्सा दे दिया जाता था। पहली बार सभी जाति और धर्म की महिलाएँ बरहेता (दरभंगा) गाँव में स्थित मेरी झोपड़ी वाले विद्यालय में **'पढ़ाई के साथ कमाई'** कार्यक्रम में एक साथ संगठित रूप से बदलाव के लिए जमा हुईं और आज तक आगे बढ़ रही हैं। इस पुस्तक की सह-लेखिका श्रीमती शशिबाला भी हमारे विद्यालय की छात्रा ही हैं।

इस पुस्तक की पाठ-योजना इस प्रकार निर्धारित की गयी है कि पाठक एक ही पुस्तक में मिथिला लोकचित्र की अधिकांश मूल बातों को जान सकें। हमारे कला-विद्यालय की छात्राओं को इस पुस्तक में सम्मिलित पाठों का विस्तृत अध्ययन करना होता है जिसे वे हमारी अन्य पुस्तकों के माध्यम से प्राप्त करती हैं ताकि वे कुशल व्यावसायिक चित्रकार बन सकें, किंतु जिन लोगों को इस कला-शैली का मोटा-मोटी ज्ञान चाहिए, उनके लिए इतना जानना आवश्यक नहीं है। सन् 1984 से हमने इस कला-विधि का प्रचार भारत के विभिन्न महानगरों में भी शुरू किया ताकि वहाँ रहने वाली बिहारी महिलाएँ और अन्य समुदायों की इच्छुक महिलाएँ भी यह कला सीख सकें। महानगरों में सिखाने का काम हम तब करते हैं जब उन शहरों में हमारी कला-प्रदर्शनी लगती है। इतने भर से हम सभी इच्छुक लोगों की सेवा नहीं कर पाते हैं। अब इस पुस्तक का प्रकाशन जब राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के द्वारा हो जाएगा तब आशा है कि भारत के सुदूर भागों तक यह पुस्तक के माध्यम से पहुँच पाएगी और हमारी चिर-अभिलाषा पूरी हो पाएगी। इसके लिए हम राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, के अधिकारियों के अनुगृहीत रहेंगे।

शुभ कामनाओं के साथ,

1 जनवरी, 2014 **कृष्ण कुमार कश्यप**

भाग-1



पाठ-1

प्राथमिकी लिखिया

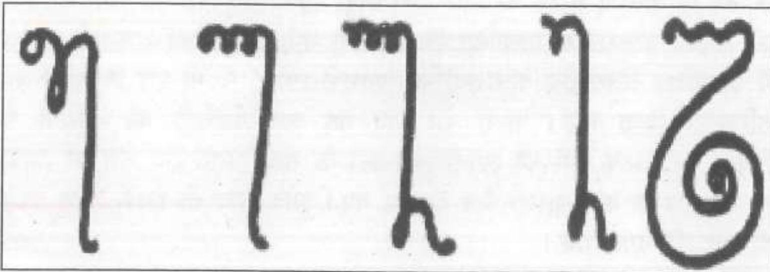
हमारे विशाल भारत का सामाजिक ताना-बाना, इसके रीति-रिवाज, पर्व-त्योहार और इसकी परंपराएँ हमारी प्राचीन संस्कृतियों की देन हैं। ऐसी ही एक प्राचीन संस्कृति, मिथिला-संस्कृति आज भी अपनी कई विशिष्टताओं के साथ हमारी जीवन-शैली के रूप में जीवित है। बिहार में गंगा नदी से लेकर नेपाल की तराई तक फैले भू-भाग को कभी मिथिला-देश के रूप में जाना जाता था। पौराणिक कथाओं के अनुसार, जगज्जननी सीता का जन्म इसी मिथिला में हुआ था। सीता का एक नाम मैथिली भी है। मैथिली इस भू-भाग की मातृभाषा है। इस क्षेत्र की एक विशिष्ट कला-परंपरा भी है जो **'मिथिला-लोकचित्र'** के नाम से विश्व-विख्यात है।

मिथिला की इस लोक-कला को आज दुनिया भले मिथिला-पेंटिंग, मधुबनी पेंटिंग या मिथिला चित्रकला के नाम से जानती हो किंतु इसका अपना पुराना नाम **'लिखिया'** है; लिखिया, अर्थात लिखने की कला, लिखने की क्रिया। लिखने की इस कला का संबंध वस्तुतः मिथिला की स्त्रियों की प्राचीन ज्ञान-परंपरा से है। इस रूप में, ये चित्र इन स्त्रियों की चित्र-लिपि भी हैं और ज्ञान-पोथी भी।

सन् 1970 से पूर्व, इस चित्रकला का उपयोग मात्र धार्मिक अनुष्ठान, व्रत और मुंडन-उपनयन या विवाहादि सांस्कारिक विधियों के अंतर्गत किया जाता था। उस समय तक इस कला का प्रचलन मात्र मिथिला के घर-आँगन तक सीमित था। सन् 1970 में भारत के राष्ट्रपति ने इस कला को **'मिथिला-लोकचित्र'** के रूप में मान्यता प्रदान की और जितवारपुर गाँव (मधुबनी) की जगदम्बा देवी को राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित किया। उसी वर्ष, जापान की राजधानी टोक्यो में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय कला-प्रदर्शनी **'एक्सपो-1970'** में भी इस चित्रकला को सम्मिलित किया गया। पहली बार जब यह कला मिथिला की वीथियों से निकल कर, चटक रंगों की अपनी छवि-छटा के साथ अंतर्राष्ट्रीय मंच पर आयी तो देश-देश के कला-पारखी जैसे दंग रह गए। इसके बाद तो इसके चरण बढते ही गए, दिग्दिगंत तक।

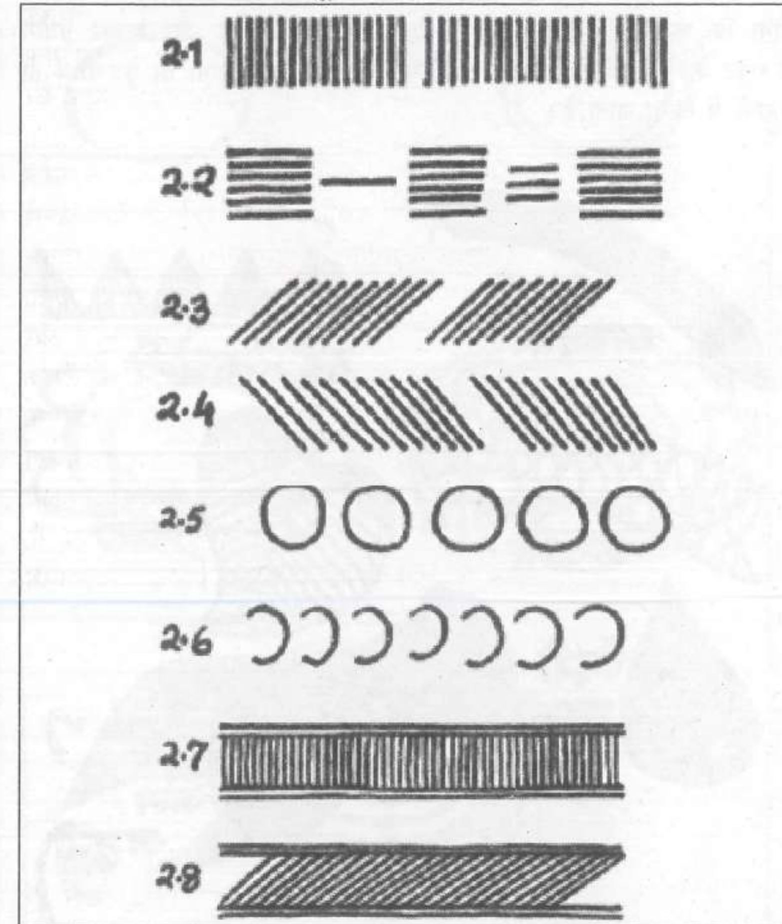
सन् 1980 से पूर्व, मिथिला लोकचित्र का प्रशिक्षण परंपरागत और वंशानुगत पद्धति पर आधारित था, जिसके अंतर्गत परिवार की बेटियाँ अपनी माँ या अन्य बड़ी महिलाओं से इस कला का ज्ञान प्राप्त करती थीं। बहुत परिवारों में, किसी शुभ दिन में, बालक और बालिका दोनों से, भूमि पर चिकनी मिट्टी के ढेले या खड़िया से गणेशजी का अंकुश बनवाया जाता था। बच्चे भूमि पर गणेशजी के अंकुश के किसी एक रूप का अभ्यास करते हुए **'ओनामासीधं'** बोलते जाते थे। यह असल में विद्या-वारिधि श्रीगणेश के मंत्र **'ओम नमः सिद्धं'** का तोतली बाल-रूप है, ओनामासीधं। इसके साथ ही बच्चों का लेखन-अभ्यास शुरू होता था। यहाँ गणेशजी के अंकुश के पाँच रूप दिए जा रहे हैं। पुस्तक का यह प्रथम अध्याय 'मिथिला लोकचित्र' के शिक्षण-पाठ के रूप में रखा गया है ताकि इच्छुक पाठक इस विश्व-विख्यात कला का मौलिक ज्ञान प्राप्त कर सकें।

प्रस्तुत पुस्तक का पहला खाका सन् 1980 में तैयार हुआ। इससे पहले मिथिला लोकचित्र की कोई लिखित शिक्षण-सामग्री उपलब्ध नहीं थी जिस कारण से इस कला का ज्ञान मात्र उन्हीं दो उच्च जातियों के परिवार में सीमित था जिनके परिवार की महिलाएँ इस कला का उपयोग धार्मिक-सांस्कारिक अवसरों पर करती थीं। यह लेखक अपने शैशव काल से ही निरक्षर समुदायों, कामकाजी बच्चों और बालिकाओं को साक्षर करने के अभियान में जुट गया था। उन दिनों यह लेखक मिथिला-चित्र और दलित महिलाओं के गोदना-चित्र के बहुत सरल प्रतीकों से, बहुत सरल चित्र से अक्षर बनाने की विधि का प्रयोग कर रहा था। संयोगवश, सन् 1970 में भारत सरकार ने जब इस कला को **'लोकचित्र'** के रूप में सरकारी मान्यता प्रदान की तब इस लेखक ने व्यापक क्षेत्र में लोकविद्या के रूप में, लोककला के माध्यम से **'पढ़ाई के साथ कमाई'** की एक पद्धति का शुभारंभ किया। यह पुस्तक उसी पद्धति की पहली कड़ी है।



पाठ-2
मौलिक अभ्यास

पाठ-2 के अंतर्गत कुछ ऐसे चिन्हों को अभ्यास के लिए रखा गया है जिनसे मिथिला-चित्र बनते हैं। इस क्रम में सबसे पहले **लंब,** इसके बाद सरल रेखा या रेखा, तिरछी रेखा, वृत्त या गोला, अर्धवृत्त या आधा गोला रखा गया है। इच्छुक पाठकों को चाहिए कि इन चिन्हों का, स्वयं अनुशासन के अधीन, पर्याप्त अभ्यास करें। जब लगे कि इनका अभ्यास पूरा हो गया है तब बिंदु 2.7 और 2.8 के अंतर्गत दिखलाए गए अभ्यास पूरे करने चाहिए।



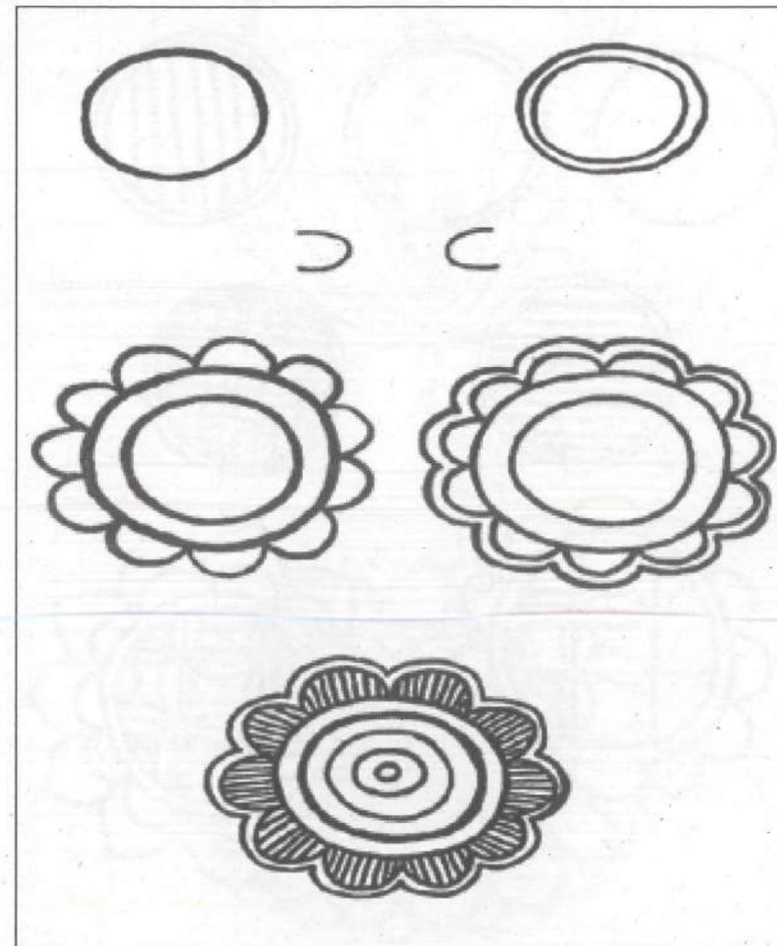
पाठ-3
कचनी

इस पाठ में मिथिला चित्रकला के बहुत महत्वपूर्ण अवयव का अभ्यास निर्धारित है, कचनी का अभ्यास। कचनी कहते हैं 'महीन-महीन कचने' या महीन-महीन काटने को। इसका प्रयोग अलंकरण के कई कार्यों के लिए होता है। उदाहरण के लिए, मिथिला चित्र में दोहरे स्थान बहुतायत से पाये जाते हैं, जैसे दोहरी रेखा, दोहरे वृत्त। इस दोहरेपन का संबंध तो चित्रकला के दार्शनिक पक्ष से है जिसका अध्ययन हम बहुत आगे की पढ़ाई में कर सकते हैं, यहाँ इतना जानना पर्याप्त होगा कि **कचनी** मिथिला चित्र की एक खास पहचान है और इसका प्रयोग सजावट के काम में विशेष रूप से किया जाता है। कभी-कभी तो पूरा चित्र ही कचनी से किया जाता है।



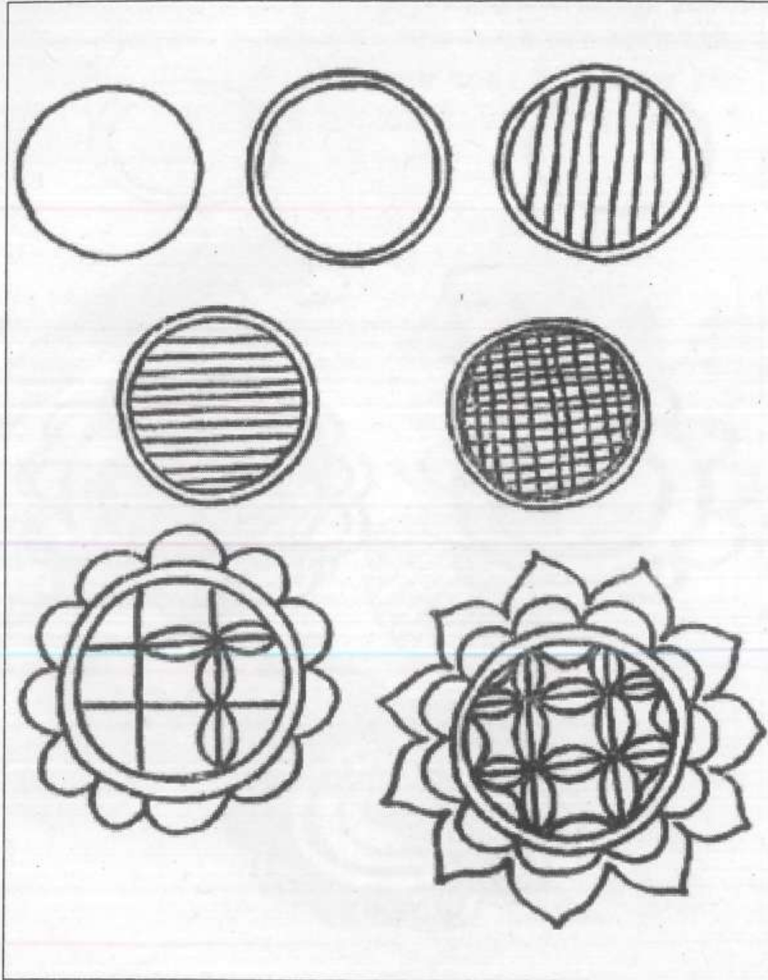
पाठ-4
आकार-निर्माण

पाठ-4 के इस अभ्यास में गोला या वृत्त को दुहराना, उस पर **झिटकी** (आधा गोला से बने चिन्ह) लगाना और झिटकी के भीतर लंब या खड़ी रेखा से कचनी करना दिखलाया गया है। मानना चाहिए कि यहाँ से आकार-निर्माण का काम आगे बढ़ रहा है। इस बात का हमेशा ध्यान रखना आवश्यक है कि चित्र बनाने के काम में साफ-सफाई बहुत आवश्यक होता है।

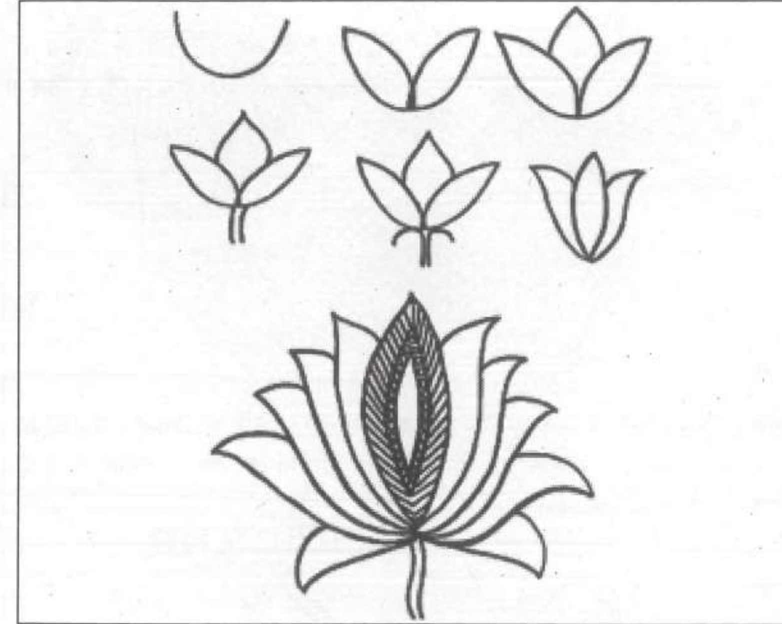


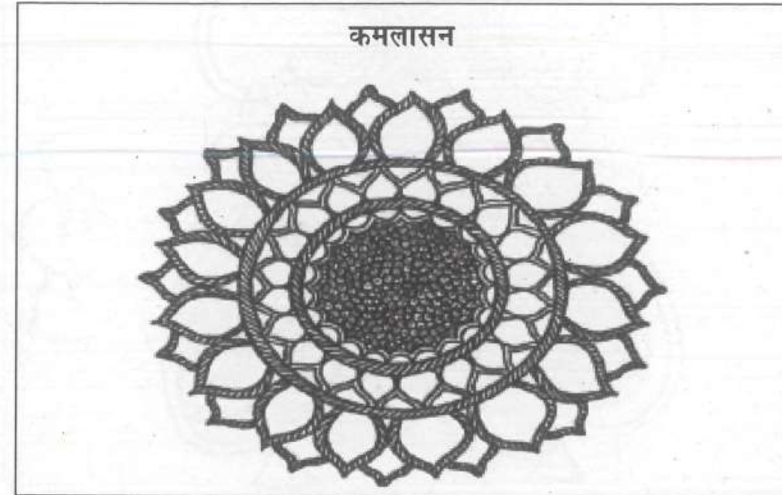
पाठ-5
पुरैन

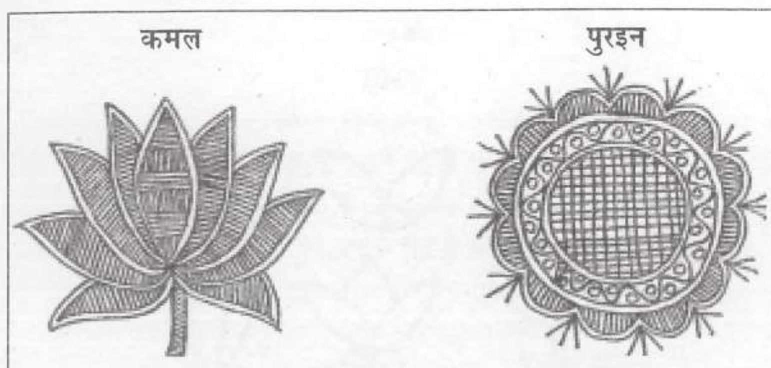
पुरैन या **पुरइन** कहते हैं कमल के पत्ते को। मिथिला चित्रकला में पुरइन का विशेष महत्व है। यह एक अरिपन है। किसी तरह का व्रत-अरिपन बनाना हो, पुरैन की लिखिया अनिवार्य होती है। यह एक तरह से पूजा की थाल है, व्रत में आहूत देवताओं का पादासनी है। प्रतीक रूप में यह स्त्री का सकल प्रतीक है।



पाठ-6
कमल

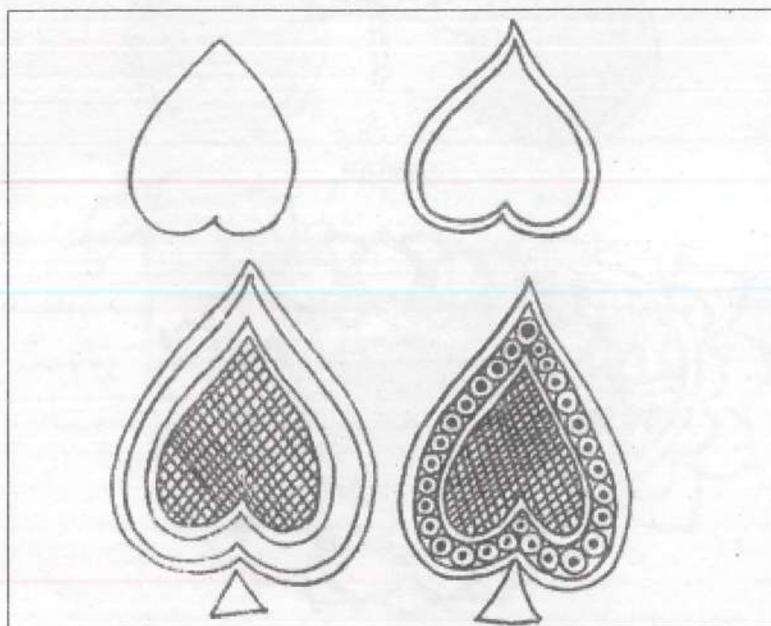


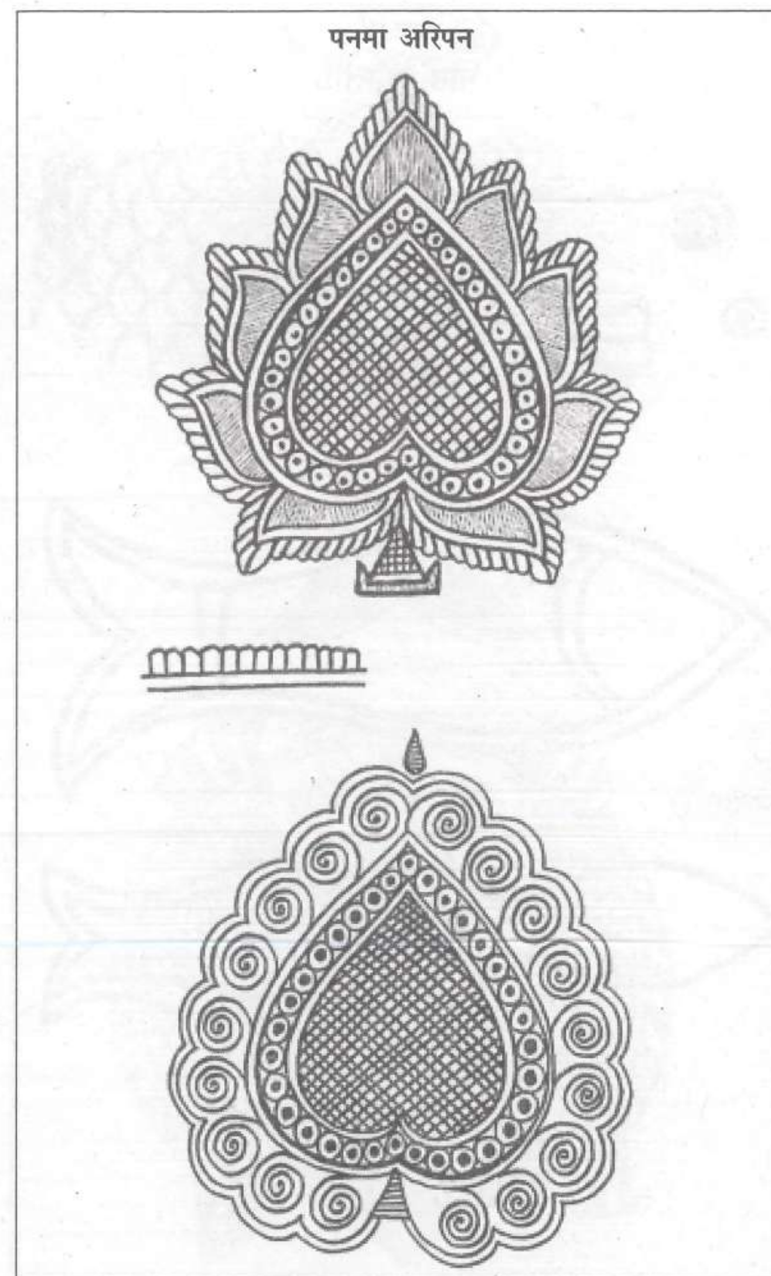




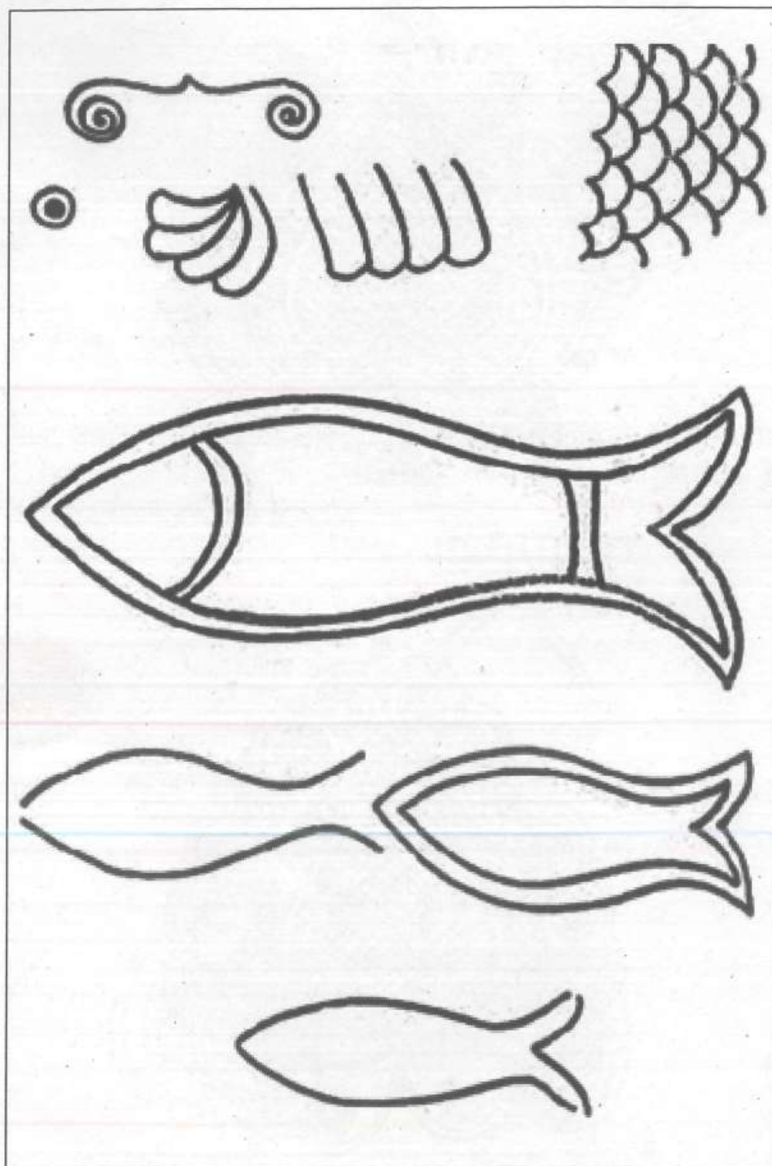
पाठ-7
पनमा

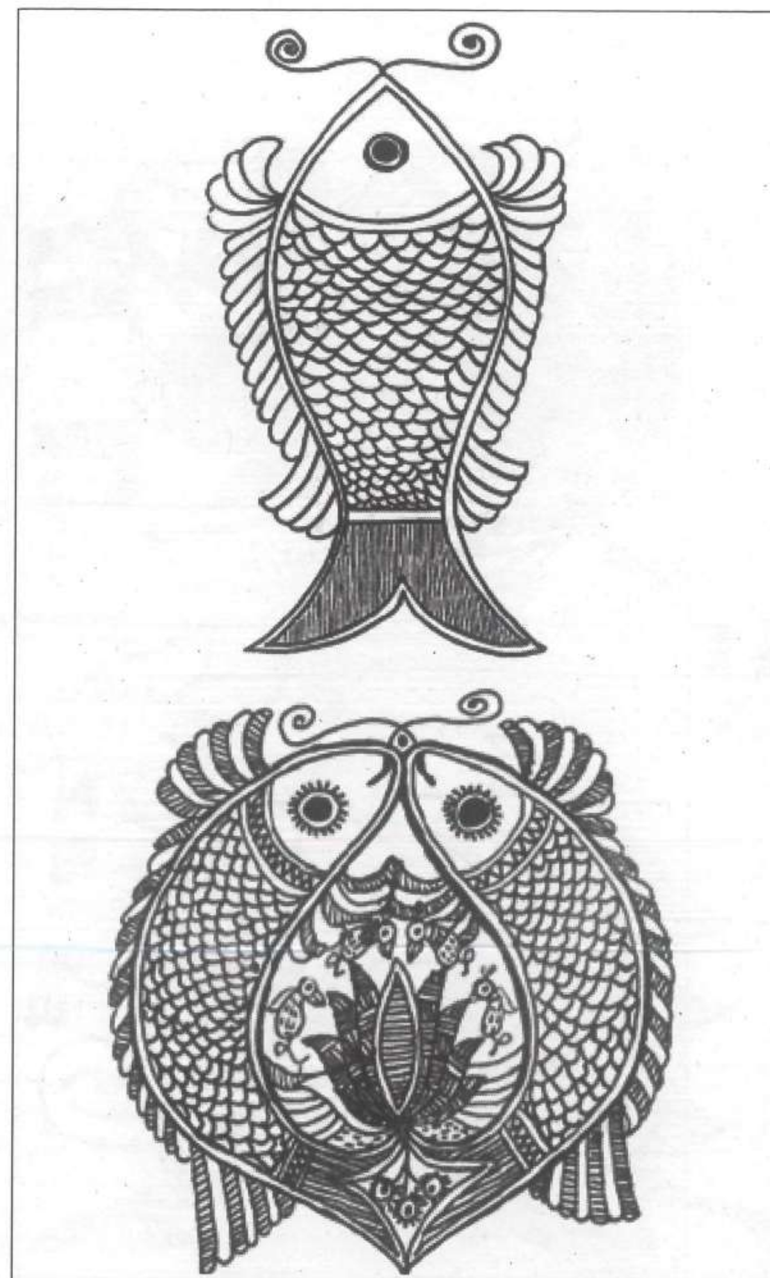
पनमा अर्थात पान के आकार का अथवा पान के आकार की रचना। पनमा का प्रयोग कई तरह के सांस्कृतिक और धार्मिक अरिपनों के रूप में किया जाता है जिसका अध्ययन हम आगे करेंगे।



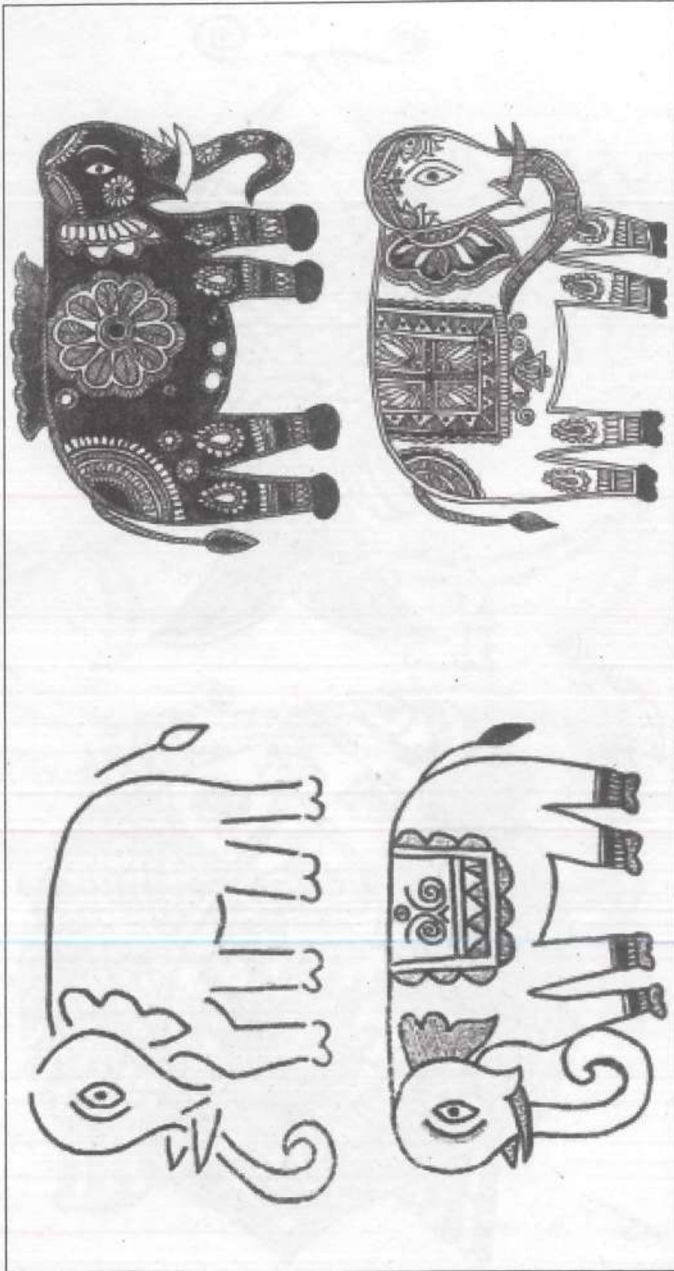


पाठ-8
माछ (मछली)





पाठ-9
हाथी



पाठ-10
सुग्गा (तोता)

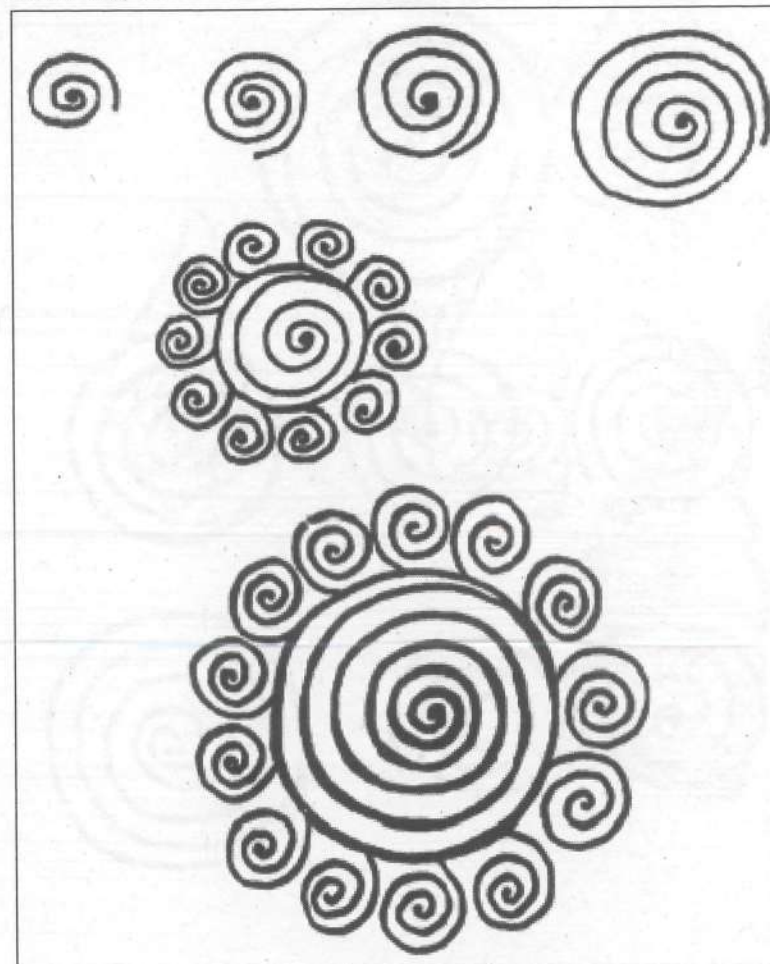


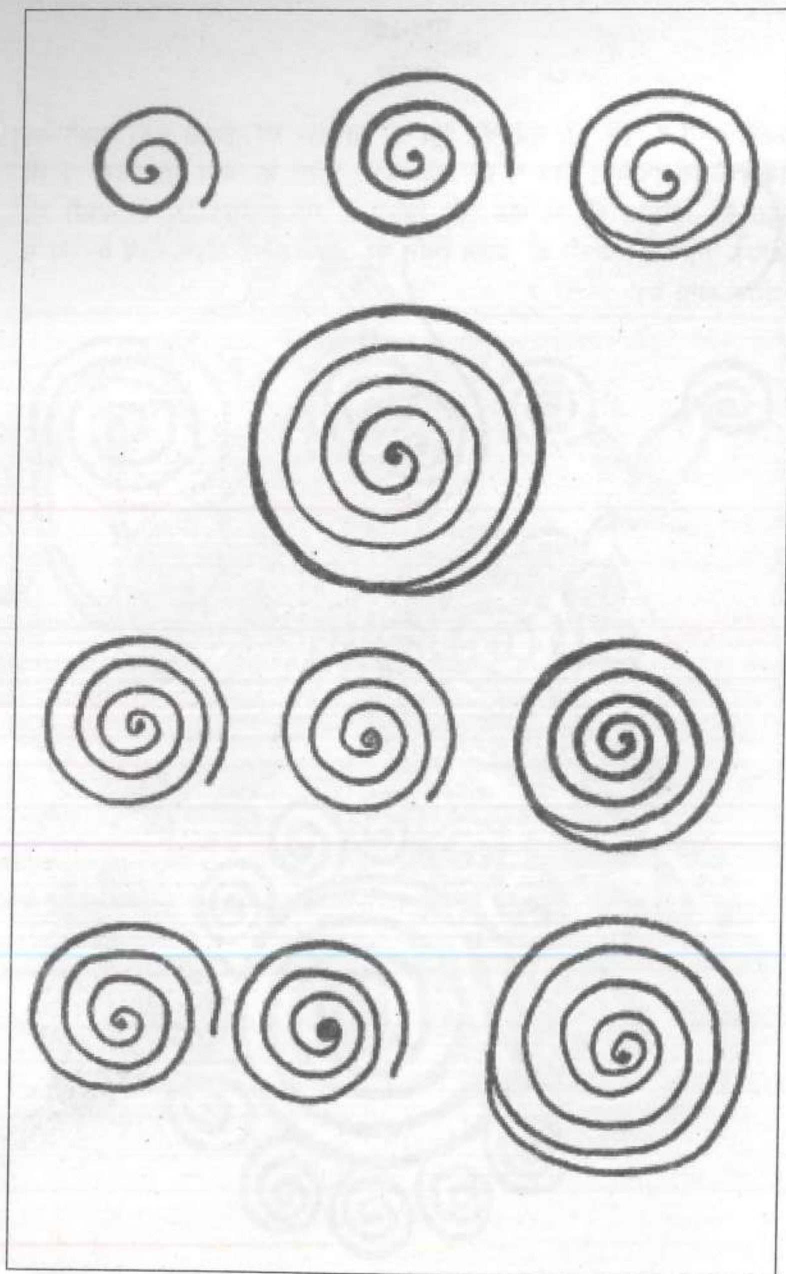
पाठ-11
मयूर

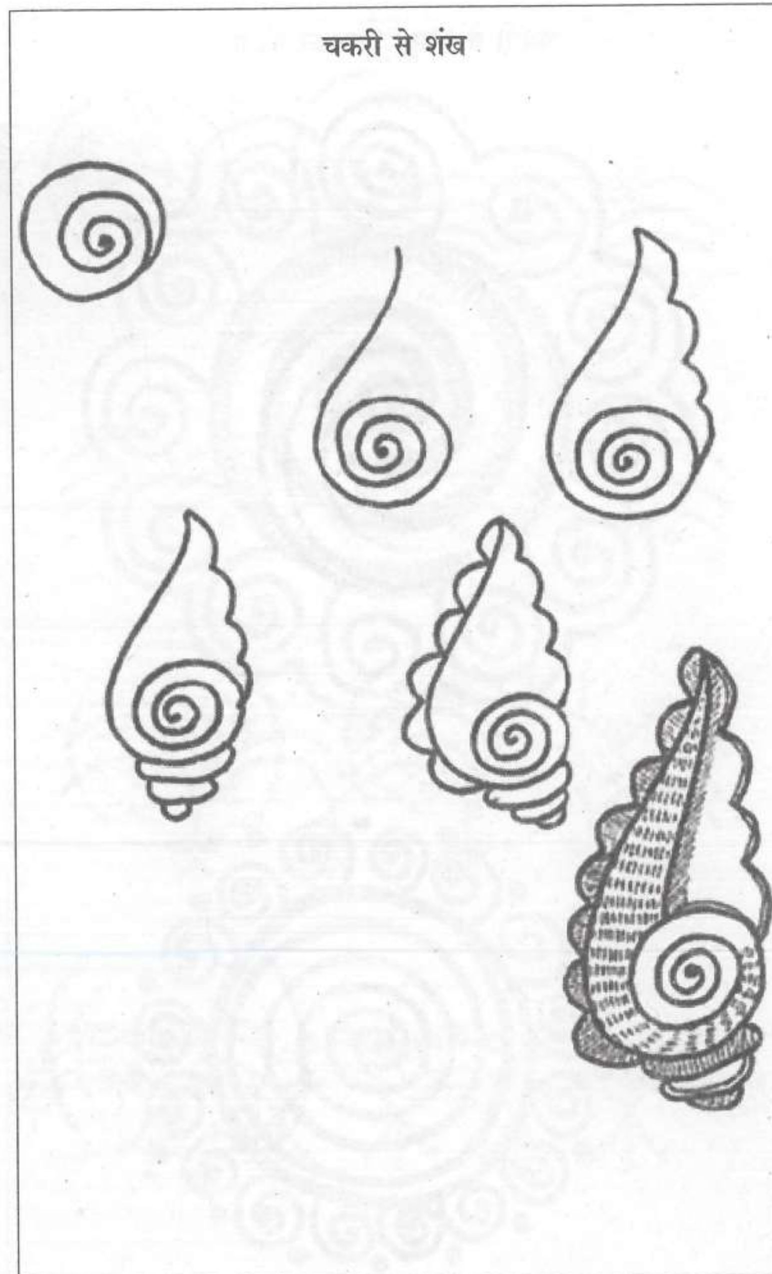


पाठ-12
चकरी

चकरी कहते हैं चक्र को, चक्के को, सूर्य को या साँप की कुंडली को। चकरी का प्रयोग केवल मिथिला चित्र में ही नहीं बल्कि भारत के अन्य लोकचित्रों में भी होता है। मिथिला की ही एक और चित्रशैली, गोदना चित्रशैली में चकरी का व्यापक प्रयोग है। चकरी का लेखन भित्ति पर और देह पर गोदना-चित्र के रूप में अधिक होता है।






चकरी से शंख

चकरी में 'तामा' लगाकर रचना

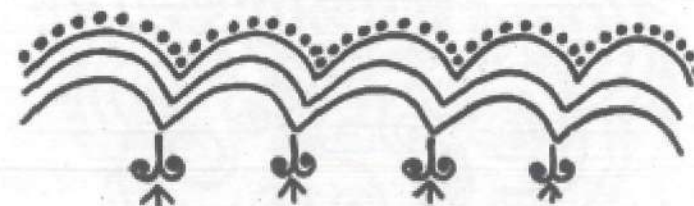


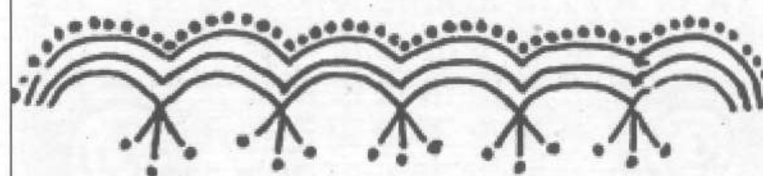


'बजरी'









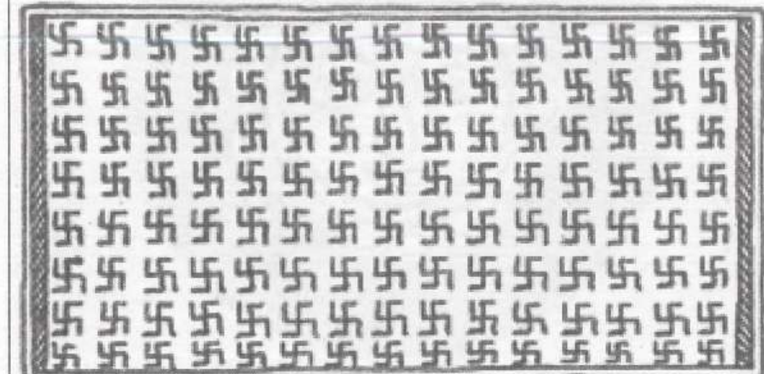
चकरी में 'तामा' और 'बजरी' लगाकर रचना



पाठ-13
स्वस्तिक और स्वस्तिक मैट

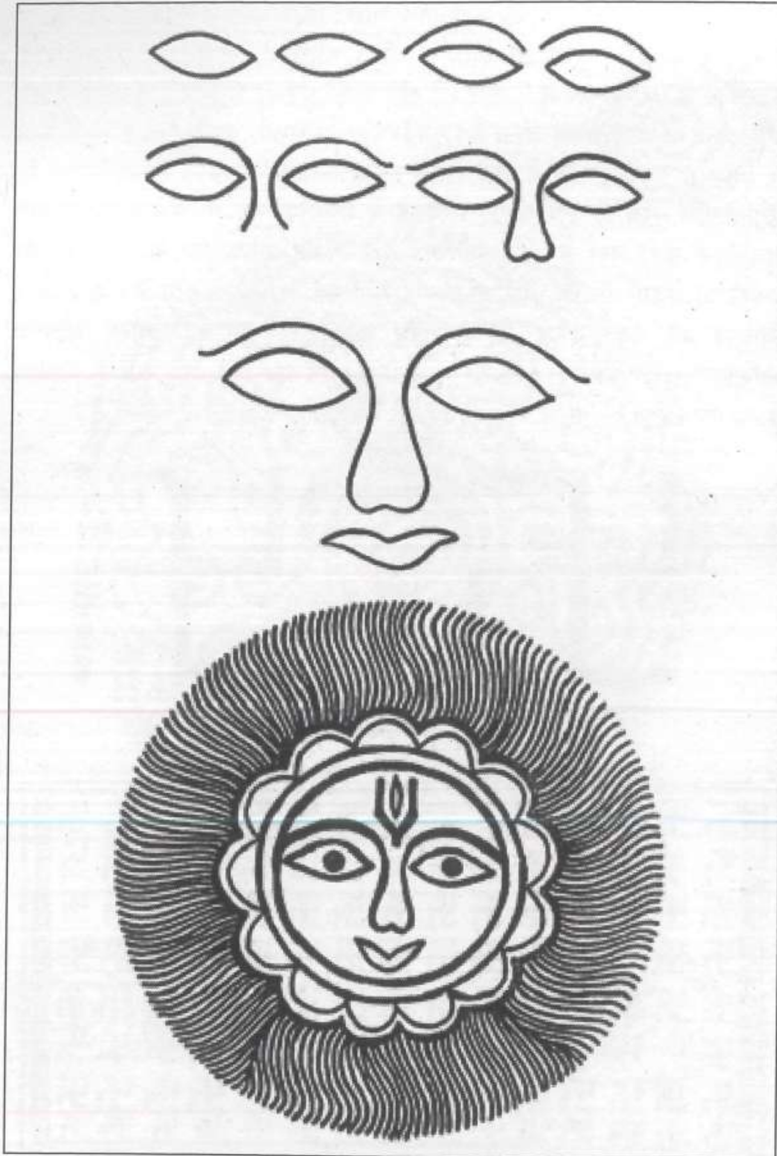
स्वस्तिक प्रतीक के प्रयोग का प्राचीनतम साक्ष्य सिंधु घाटी-संस्कृति में मिलता है किंतु इसका प्रयोग आज भी मिथिला सहित भारत के अन्य सामाजिक-धार्मिक परंपराओं में व्यापक रूप से होता है। इसका प्रयोग मंत्ररूप में और प्रतीकरूप में शुभ और शांति के लिए किया जाता है। गृह-निर्माण के समय, वर-वधू के परिणय काल में, विद्यारंभ काल में, खेत में बीज डालते समय, यात्रा प्रारंभ करते समय, व्यापार में, संतानोत्पत्ति काल में और षोडश संस्कारों में स्वस्तिक मंत्र या प्रतीक का उपयोग शुभकारक कहा गया है। मिथिला-चित्र में स्वस्तिक प्रतीक को श्रीगणेशजी और उनकी दो स्त्रियों (सिद्धि और बुद्धि) का समन्वित रूप माना गया है। शंख युक्त स्वस्तिक को 'लक्ष्मी-गणेश' का रूप और समृद्धि का मार्ग खोलनेवाला 'सौभाग्य स्वस्तिका' कहा गया है। मिथिला में स्वस्ति-लेखन का एक और रूप है जिसका प्रयोग पत्र-लेखन के आरंभ में होता है। इसे 'सिद्धिरस्तु' या 'आँजी' कहते हैं।

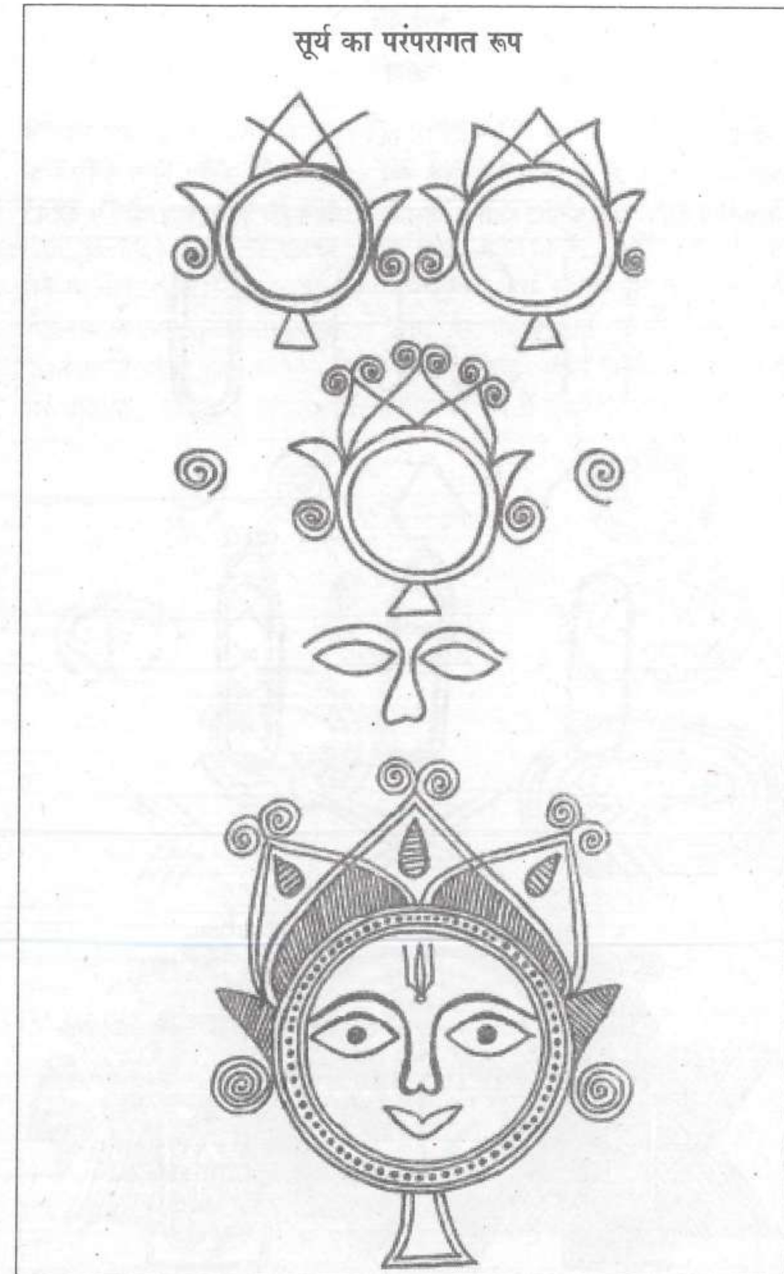




पाठ-14

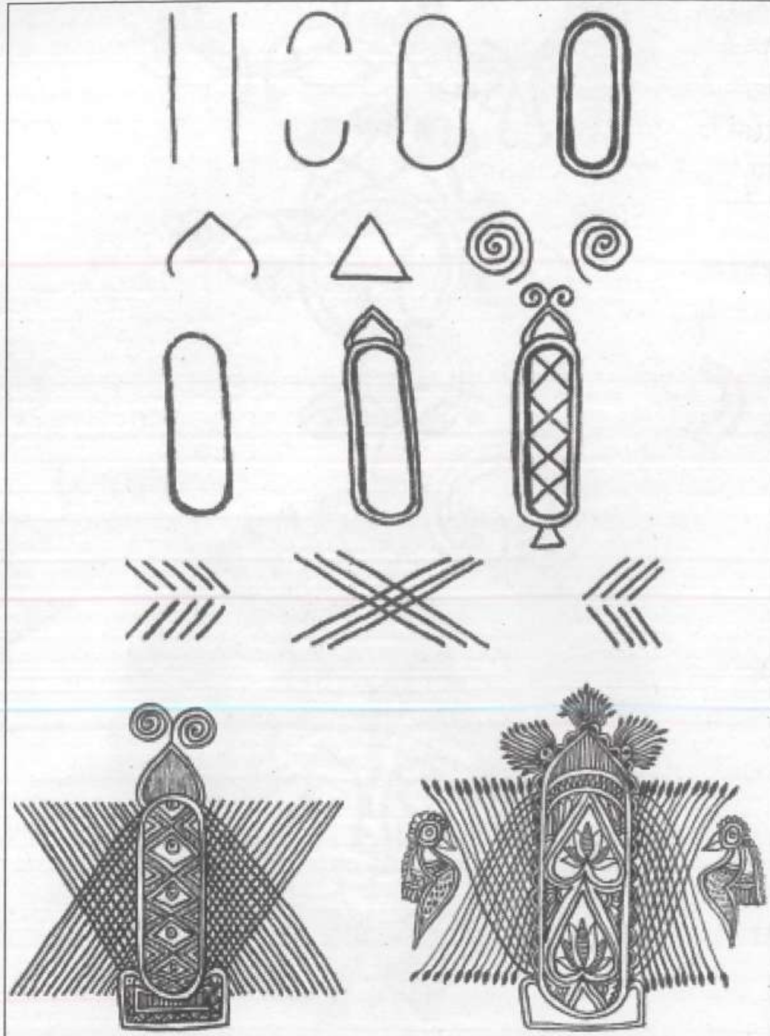
सूर्य





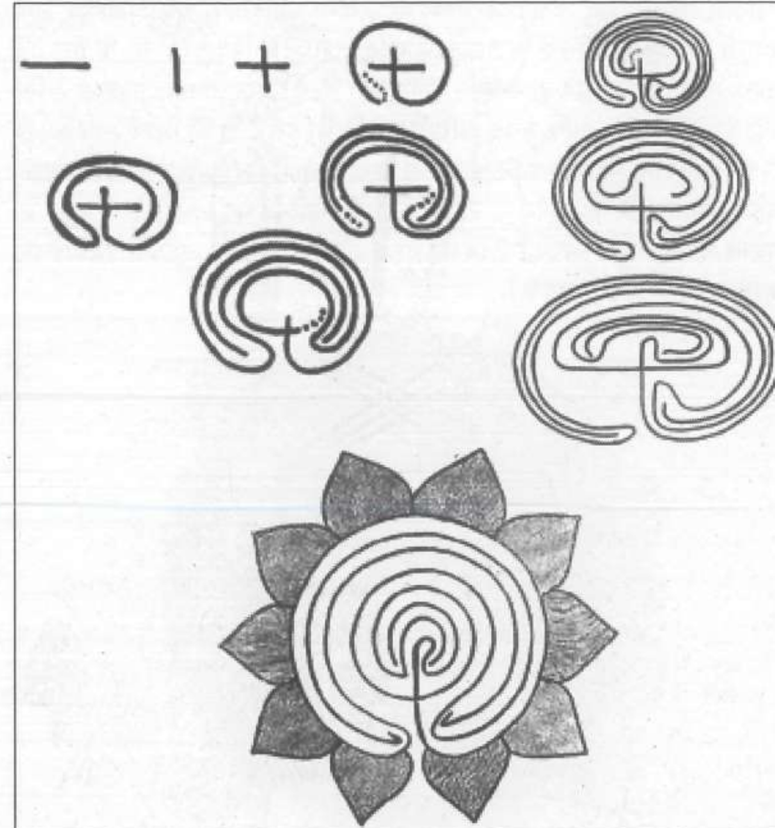
पाठ-15
बाँस

वानस्पतिक बाँस से तो हम सभी परिचित होंगे किंतु उसी बाँस का मिथिला-चित्र में कलात्मक रूप है जो उसके वानस्पतिक रूप से सर्वथा भिन्न है। मिथिला-चित्र के अरिपनों में इसका विशेष अर्थ होता है जिसका अध्ययन हम अरिपन-अध्याय में करेंगे।



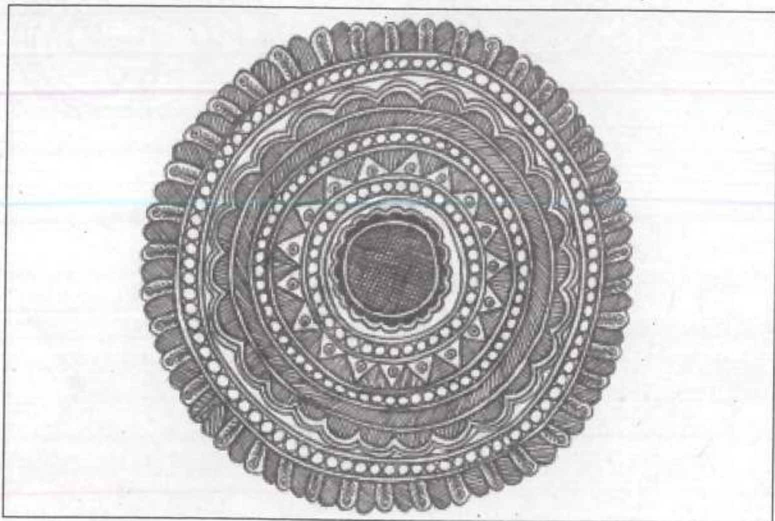
पाठ-16
गर्भचक्र

गर्भचक्र भारतीय कला-परंपरा का अति प्राचीन प्रतीक है जिसका प्रयोग मिथिला समेत विश्व की अनेक संस्कृतियों में होने के साक्ष्य प्राप्त होते हैं। मिथिला-चित्र में यह स्त्रियों की उर्वरता और सृजन की रहस्यमयता का प्रतीक है। सन् 1950-55 तक मिथिला में इसका प्रयोग किसी बालिका के पहली बार रजस्वला होने के अवसर पर किया जाता था। परंपरानुसार, इस अवसर पर कुलदेवता की गीत-नाद के साथ पूजा और आँगन में 'बाँस' के साथ संयुक्त गर्भचक्र अरिपन का लेखन किया जाता था। तांत्रिक यंत्र के रूप में इसका प्रयोग किसी स्त्री के पहली बार गर्भवती होने पर भी 'गर्भस्थापन संस्कार' के रूप में किया जाता था।

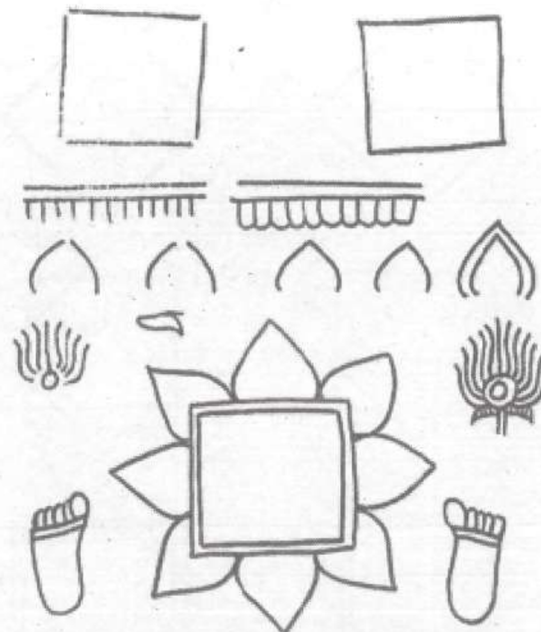


पाठ-17
अरिपन

मिथिला चित्रकला और सामाजिक-धार्मिक परंपरा में 'अरिपन' का विशेष महत्व है। मांगलिक कृत्यों, धार्मिक पर्वों और विशिष्ट सांस्कृतिक अवसरों पर भूमि-चित्रण या भूमि-सज्जा करने की परंपरा संपूर्ण भारत में प्रचलित है। कहीं इस चित्रण को अल्पना, कहीं ऐपन, कहीं रंगोली, मांडण तो कहीं चौक-पूरन कहा जाता है किंतु आश्चर्यजनक रूप से, हर जगह यह लेखन का ही एक रूप माना जाता है, चित्रण का नहीं। वस्तुतः ये चित्र लेखन के अति प्राचीन रूप, चित्रलिपि हैं। दक्षिण भारत की स्त्रियाँ प्रतिदिन अपने घर के द्वार पर और कुलदेवता के सम्मुख, सूर्योदय और सूर्यास्त से पहले, पत्थर के चूर्ण से, भूमि पर अनेक प्रकार के 'कोलम' की रचना करती हैं। मिथिला में गाभा संक्रांति, दीपावली, भ्रातृद्वितिया, देवोत्थान एकादशी, नवान्न आदि पर्वों एवं विवाहादि शुभ अवसरों पर, गुणवती स्त्रियों के द्वारा श्रद्धापूर्वक, चावल के पिठार (चावल के चूर्ण की लोई श्वेत रंग) से, भूमि पर अरिपन बनाए जाते हैं। यहाँ यह जानना आवश्यक है कि सभी अवसरों के लिए पृथक-पृथक अरिपन होते हैं और इस कला की शिल्पी मात्र स्त्रियाँ हैं। भूमि पर अरिपन का लेखन उँगलियों से किया जाता है किंतु इसका विधिगत लेखन भित्ति, कागज और कपड़े पर भी किया जाता है। अरिपन का अर्थ होता है कला के माध्यम से, श्रद्धापूर्वक अपने इष्टदेव को भावों का अर्पण करना। अरिपनों का विवेचन अगले अध्याय में दिया गया है।

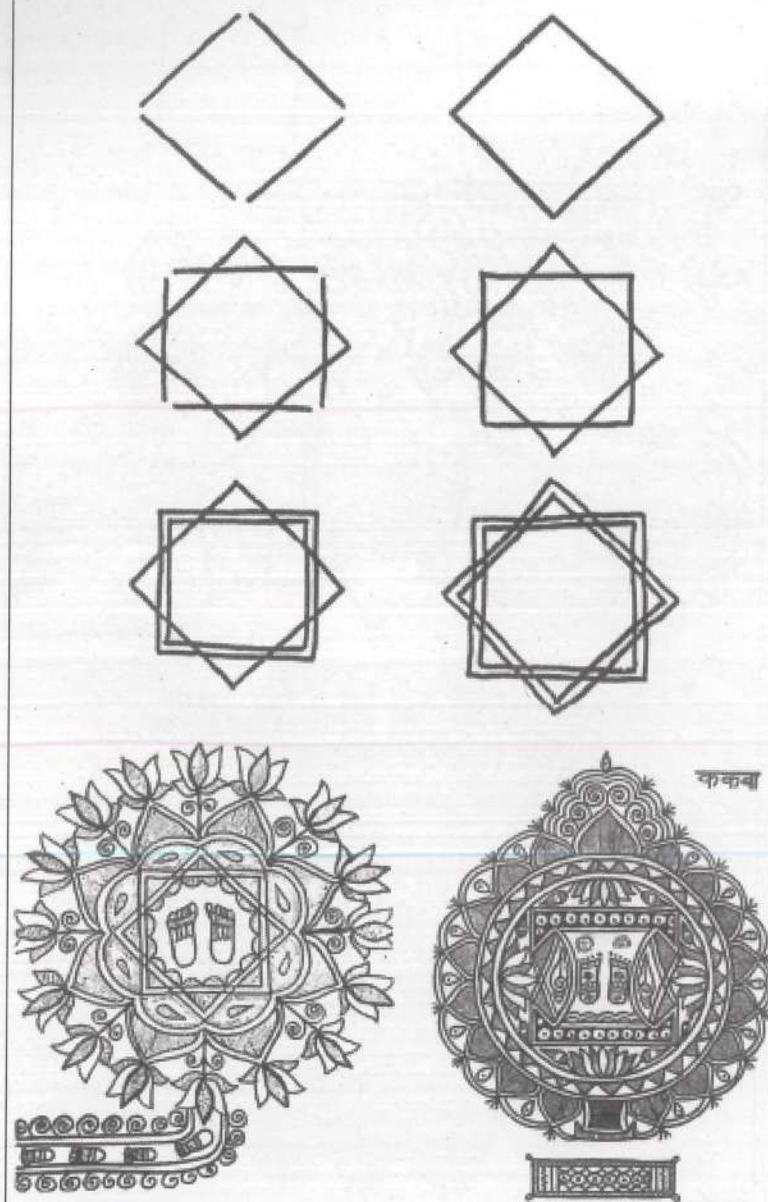


देवोत्थान अरिपन (1)





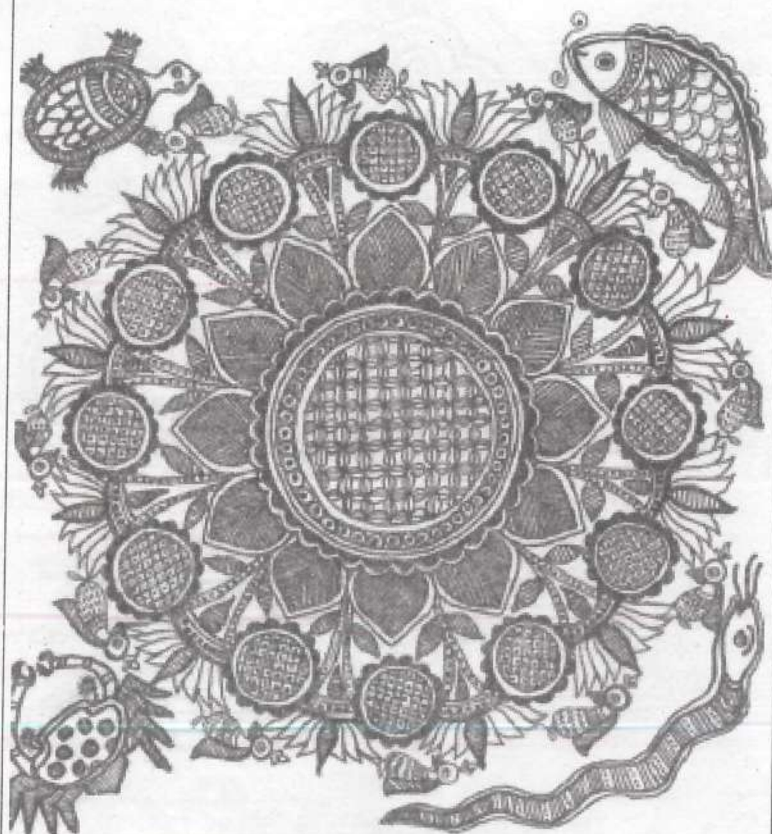
देवोत्थान अरिपन (2)



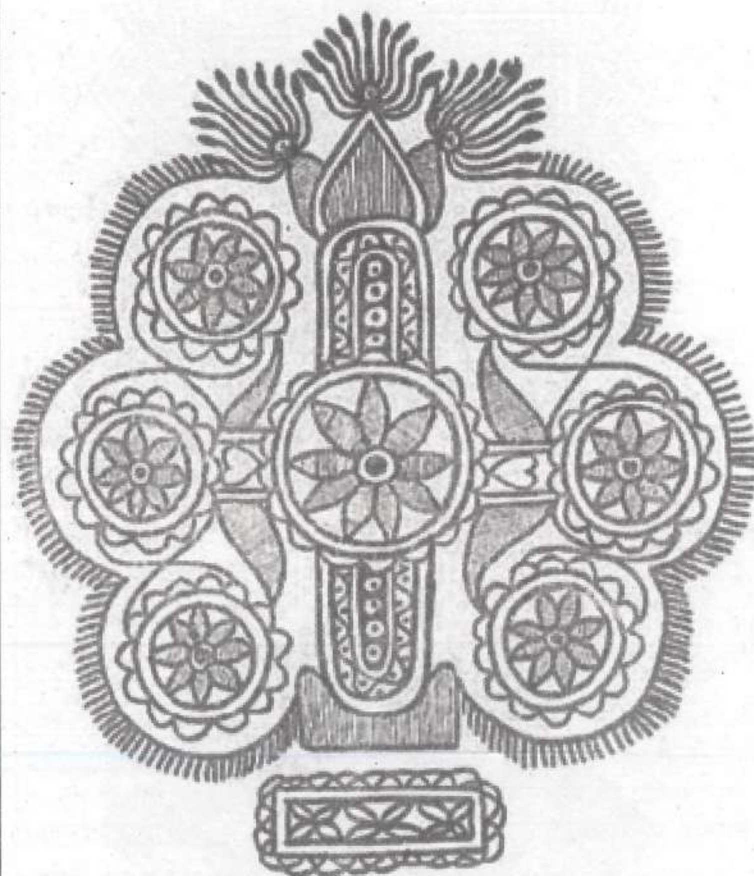
विष्णु अरिपन (चौशंख)



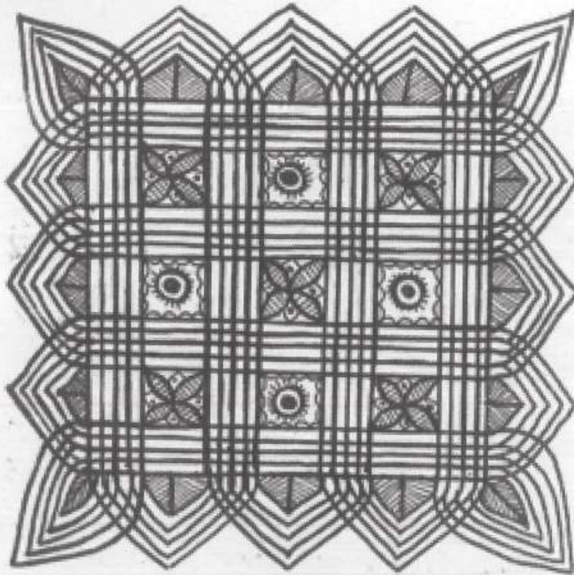
कमलदह



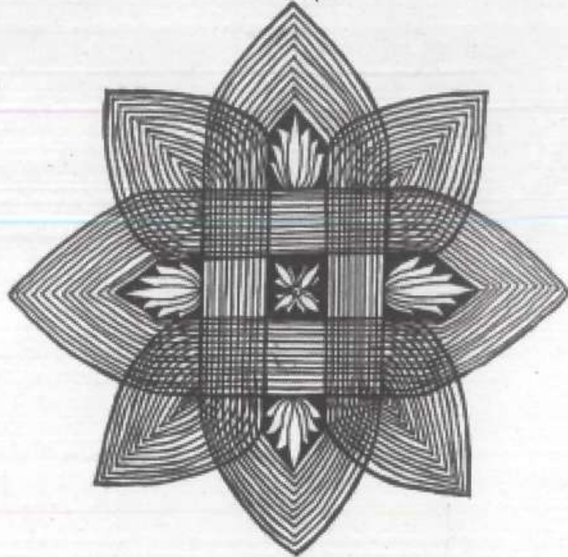
कोबर



सुखासन



मणिपद्‌म



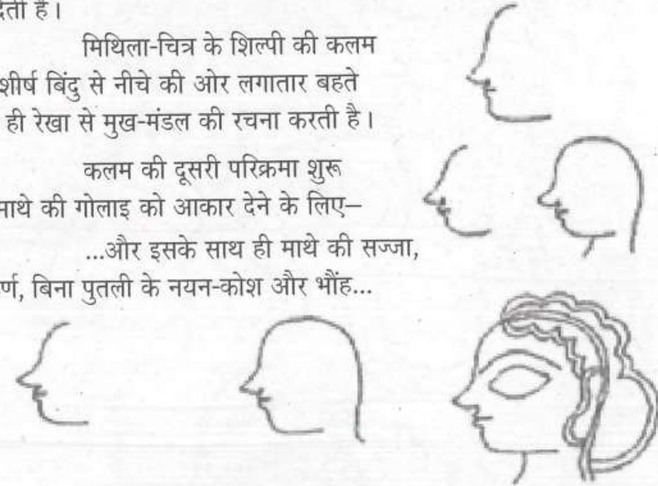
पाठ-18
आकृति

उन्नत भाल, ऊँची-पतली नासिका, कमान-सी भौंहके नीचे सुदीर्घ एकल नयन और स्मितिकी एक रेखा से खिंचे होंह चुप रहकर भी अपना नाम-पता बता ही देते हैं। ...फिर भी यदि परिचय में कोई कोताही रह जाय तो पतली दोहरी रेखा की कचनी में लिपटी देह-यष्टि मिथिला-चित्र को अन्य सभी लोकचित्रों में पृथक एक पहचान देती है।

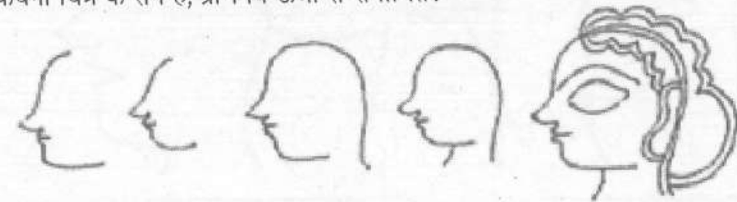
मिथिला-चित्र के शिल्पी की कलम भाल के शीर्ष बिंदु से नीचे की ओर लगातार बहते हुए, एक ही रेखा से मुख-मंडल की रचना करती है।

कलम की दूसरी परिक्रमा शुरू होती है माथे की गोलाइ को आकार देने के लिए–

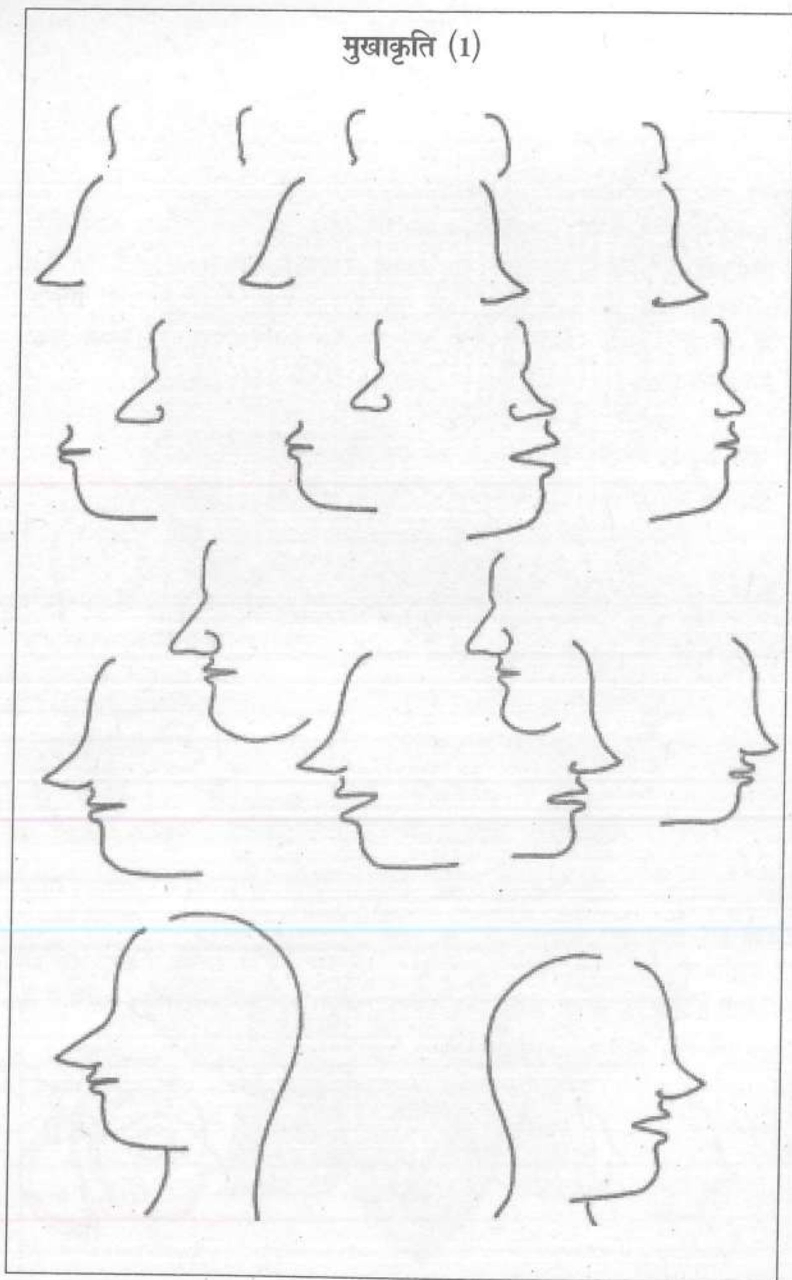
...और इसके साथ ही माथे की सज्जा, एकल कर्ण, बिना पुतली के नयन-कोश और भौंह...



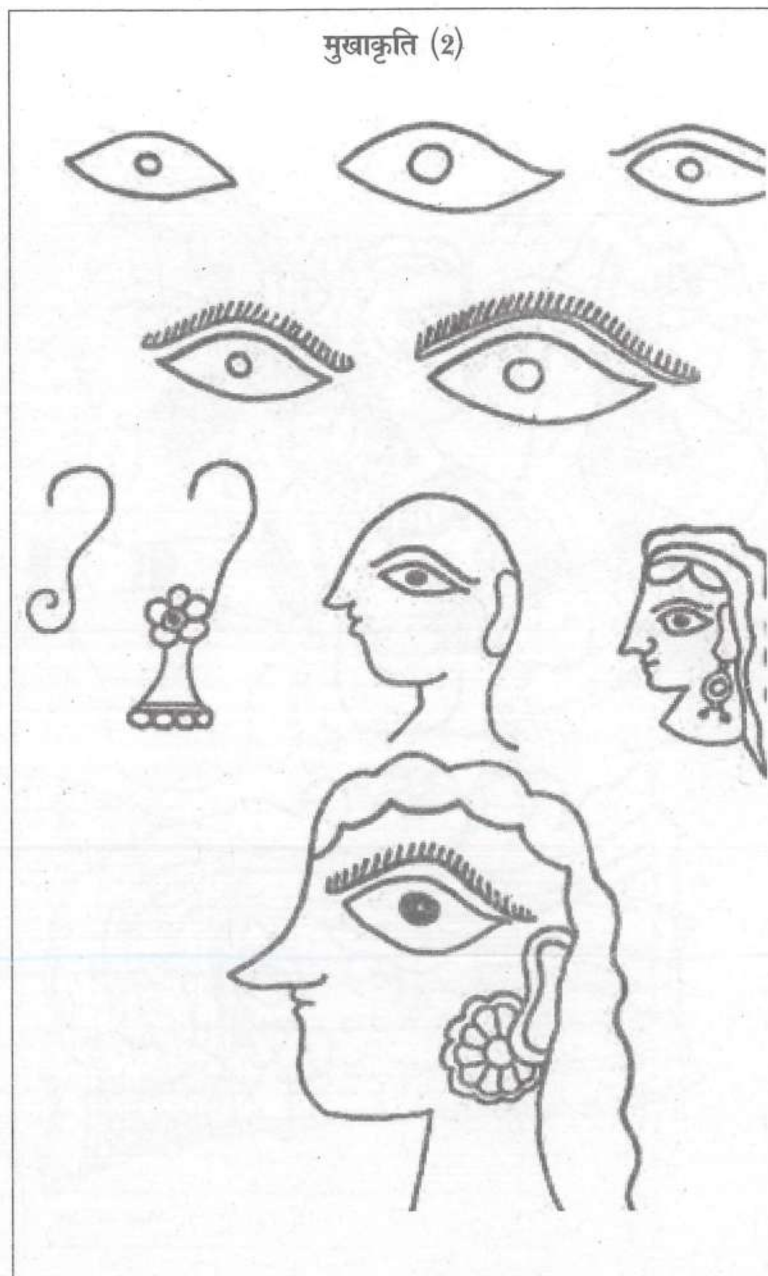
अब रचना-प्रकार के निर्णय के लिए निमित्त भर का ठहराव...सोच लीजिए, कैसा चित्र बनाना है–रंगीन–भरनीवाला चित्र या इकहरी रेखा से बने चित्र? पद्धति दोनों की है। अगर रंग-चित्र बनाना हो तो गले से इसकी प्रक्रिया शुरू हो जाती है। यहाँ से पतली-दोहवी रेखा की त्वचा और उसमें महीन कचनी। असल में ये कचनी चित्र के रोम हैं, प्राणमय ऊर्जा से रोमांचित!



मुखाकृति (1)



मुखाकृति (2)



मुखाकृति (3)



मानवाकृति (4)



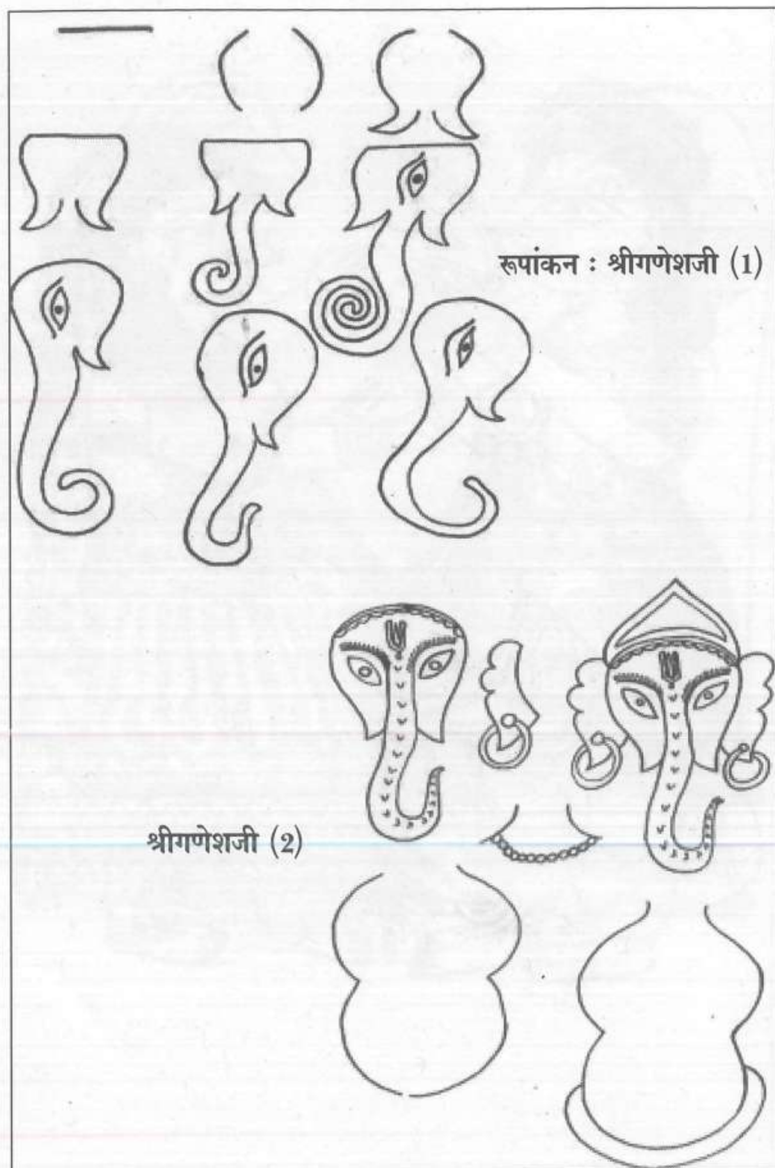
मानवाकृति (5)

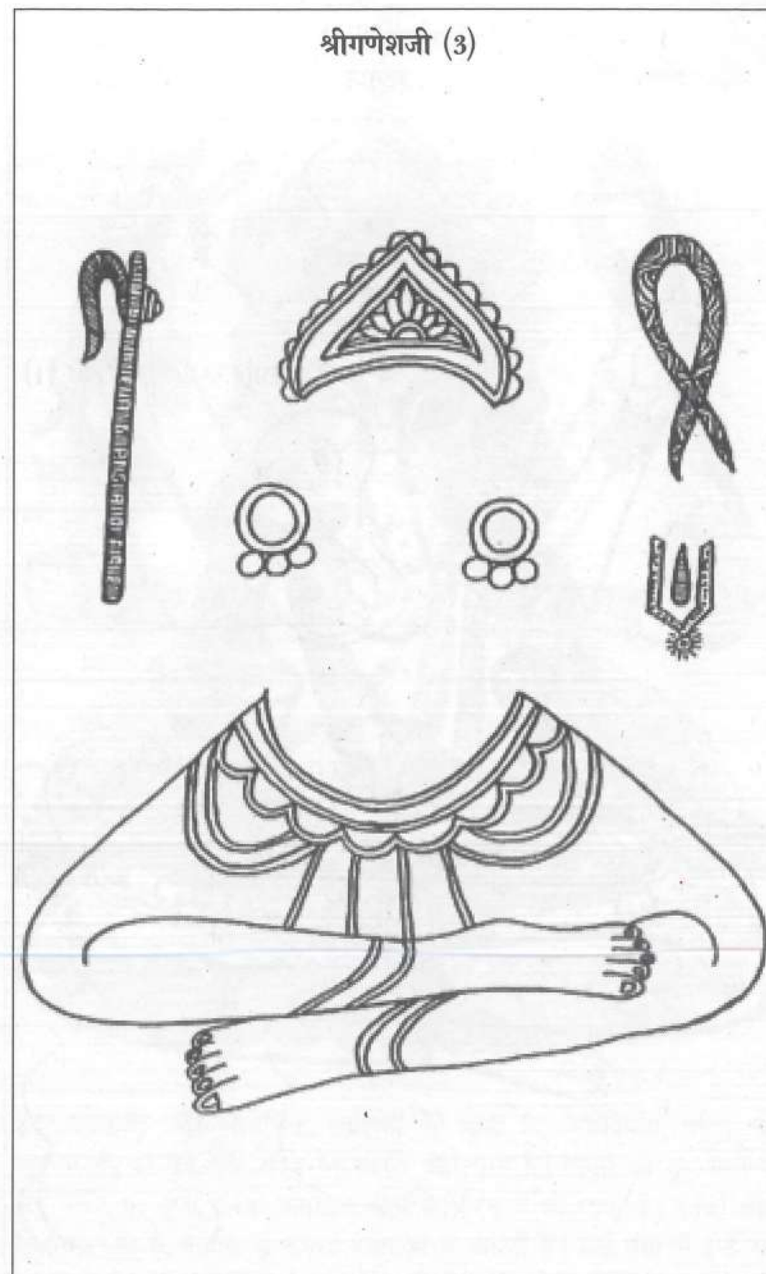


मानवाकृति (6)



पाठ-19
श्रीगणेश





श्रीगणेशजी (4)





हिंदू धर्म-ग्रंथों और पौराणिक साहित्यों में बुद्धि के अधिदेवता गणेश को शिव-पार्वती का पुत्र और सदैव मंगलकारी कहा गया है। विघ्नों को दूर करने के लिए गणेश की पूजा प्रत्येक मांगलिक कार्य के प्रारंभ में की जाती है। इनकी संज्ञा 'विनायक' भी है, क्योंकि ये समस्त देवताओं में अग्रणी हैं। कई ग्रंथों में इन्हें रुद्र का पुत्र माना जाता है किंतु पुराणों में इस संबंध में घोर मतभेद है। गणेश को

आदिदेव कहा गया है और इसी आधार पर गोस्वामी तुलसीदास ने वर्णन किया है कि स्वयं शिव और उमा ने अपने विवाह से पूर्व गणेश की पूजा की। कोशों के अनुसार इनके विघ्नेश्वर, परशुपाणि, गजानन, एकदंत, लंबोदर आदि अनेक नाम हैं जिनसे इनके स्वरूप और प्रताप का अनुमान होता है।

भारतीय चित्रकला और मूर्तिकला में गणपति के दो, तीन, चार और पाँच सिरवाले स्वरूप का भी दर्शन होता है। इसी प्रकार उनके एक से तीन दाँत भी दिखलाए गए हैं। सामान्यतः उनकी दो आँखें पाई जाती हैं किंतु तंत्रमार्ग संबंधी चित्रों और मूर्तियों में एक तीसरा नेत्र भी पाया जाता है। गणेश का वाहन मूषक है पर वे कभी-कभी सिंह अथवा मयूर पर भी आसीन देखे गए हैं। उनकी मूर्तियाँ कभी खड़ी अथवा पद्मासन स्थिति में तो कभी नृत्य-मुद्रा में अंकित हैं।

लोक विश्वास में गणेश का जो रूप प्रचलित है उसमें इनका मस्तक हाथी का है। ये हाथ में फरसा और पाश लिए रहते हैं। इनका पेट तुंदिल दिखलाया जाता है और प्रायः नाग-यज्ञोपवित पहने रहते हैं। सिद्धि और बुद्धि इनकी दो स्त्रियाँ हैं। कहीं-कहीं पुष्टि को भी इनकी पत्नी कहा गया है। सिद्धि का स्थान गणेश के बाम (बाएँ) भाग में और बुद्धि का स्थान दहिन (दाएँ) भाग में माना गया है। हिंदी मुहावरे में 'श्रीगणेश' का अर्थ होता है प्रारंभ करना।

चित्रकला सीखने के इच्छुक पाठकों की सहायता के लिए गणेश का चित्र बनाने के लिए पाँच चरणों में निर्देश दिए गए हैं। चित्र का पूर्ण सज्जित रूप बनाने में ये चरणबद्ध अभ्यास उपयोगी हैं।

भाग-2



पाठ-1

आकृति-निरूपण

मिथिला-चित्र में देवाकृति

मिथिला लोकचित्र एक पारंपरिक कला है जिसकी रेखाओं में सामाजिक और सांस्कृतिक लोच तथा रंगों में दिव्यता का परिपाक है, जो उसे दैवी शक्तियों की परिकल्पना में कौटुंबिक लयात्मकता प्रदान करता है। मिथिला चित्र के देवी-देवता किसी अनजाने-अनदेखे स्वर्ग का अधिपति या मुक्ति का प्रदाता नहीं है; वह तो अपने प्रिय कुटुंब हैं, जो यदा-कदा पारिवारिक शुभ अवसरों पर परिवार में सप्रेम पधारते रहते हैं।

परंपरागत मिथिला लोकचित्र गूढ़ तांत्रिक यंत्रों और पौराणिक कथाओं का समन्वित ज्ञान-प्रवाह है, जिसकी रेखाओं में सामाजिक-सांस्कृतिक लोच और उसके चटकीले रंगों में स्त्री-रचनाधर्मिता का ऊर्जा-प्रवाह है। चित्र का एक छोर ज्यामितिक प्रतीक शब्दावली से गुंफित स्त्रियों के ब्रह्मांडकीय बोध का परिचायक है तो दूसरा छोर पौराणिक कथा-पात्रों के साथ शिल्पी के कौटुंबिक संबंधों की लयात्मकता प्रदान करता है। मिथिला चित्र के देवी-देवता किसी अनजाने-अनदेखे स्वर्ग का अधिपति या मुक्ति का प्रदाता नहीं हैं; वे तो अपने प्रिय कुटुंब हैं, जो शुभ अवसरों पर अन्य कुटुंबों की तरह परिवार में पधारते हैं। जब कभी ऐसा अवसर परिवार में उपस्थित होता है तो किसी अन्य संबंधी को भेजने से पूर्व निमंत्रण-पत्र की पहली प्रति कुलदेवता के सम्मुख रखते हुए उन्हें सपरिवार पधारने की विनती की जाती है।

पौराणिक साहित्यों और दंत-कथाओं में उल्लेख है कि वर्षा ऋतु प्रारंभ होने के समय, 'हरिशयनी एकादशी' के दिन श्रीहरि विष्णु अपनी पत्नी लक्ष्मीजी के साथ शयन-कक्ष में चले जाते हैं और शरद ऋतु के 'देवोत्थान एकादशी' के दिन निद्रा से जगते हैं। इस दिन मिथिला की गुणवती गृहस्थ स्त्रियाँ अपने आँगन को गोबर-माटी से लीपती हैं और उस पवित्र भूमि पर चावल के श्वेत रंग (पिठार) से विस्तृत अरिपन (अष्टदल, ककबा) का उँगलियों की नोक से आलेखन करती हैं।

'अष्टदल' आठ ज्यामितिक कोणों से निर्मित कमलाच्छादित भवन है जो अष्टसिद्धि और नवनिधि से संपन्न होता है। इस कमलालय के मध्य में मणि-माणिक्य से सज्जित 'सुखासन' की रचना की जाती है जिस पर लक्ष्मी-नारायण सुखपूर्वक शयन करते हैं। देवोत्थान एकादशी से पूर्व 'गाभा संक्रांति' का पर्व होता है। यह गो और भूमि की आराधना का पर्व है। इस दिन आँगन में 'ककबा' अरिपन का आलेखन किया जाता है। मान्यता है कि इस दिन लक्ष्मी और विष्णु वैकुंठ (प्रकट रूप में कुलपूजा-स्थल) से चल कर देवोत्थान एकादशी के दिन पुनः मिथिला लौटते हैं। मिथिला-चित्र के पौराणिक और अन्य प्रसंगों के चित्रण में चार तरह की आकृतियों का आलेखन होता है **देवाकृति, मानवाकृति, दानवाकृति** और **जीवाकृति**। इन सभी आकृतियों का रूपांकन अगले पृष्ठों में किया गया है।

विष्णु को समर्पित इन भूमिचित्रों के पीछे एक संबंध-कथा है। मिथिला की बेटी सीता को आद्याशक्ति भगवती कहा गया है। वह विष्णुरूप श्रीराम की अर्धांगिनी हैं, लक्ष्मीरूपा हैं। इस रूप में लक्ष्मी भी मिथिला की बेटी और विष्णु मिथिला के दामाद हैं। मिथिला की महिला चित्रकारों की यह समझदारी देवचित्रों को धार्मिक से अधिक सामाजिक छवि प्रदान करती है।

पाठ-2
महादेव और उनके रूप

मिथिला की दंतकथाओं में महादेव शिव के जिस रूप का चित्रण हुआ है वह एक भोले-भाले गरीब गृहस्थ का रूप है। मधुस्रावनी की कथाओं में महादेव की पत्नी उमा जब कभी बदहाल गृहस्थी से ऊब कर अपने मायके जाने की धमकी देती है तो उसे मनाने की गरज से शिव मछली पकड़ने चला जाता है। शिव लोगों को मछली पकड़ते देख कर पानी में घुस तो जाता है लेकिन वह मछली पकड़ने का असल में कोई ढंग नहीं जानता। आखिर जैसे-तैसे कुछ मछलियाँ पकड़ कर घर लाता भी है तो घर में न कोई बर्तन-बासन है और न तेल-मसाला। मछली बने तो कैसे! पार्वती पड़ोस के घरों में उधार माँगने जाती है। लोग सोचते हैं, इसकी हालत ऐसी नहीं है कि उधार (पैंचा) लौटाएगी; कहीं उधार नहीं मिला। हार कर पार्वती महाकवि विद्यापति के गीतों के माध्यम से दुःख व्यक्त करती है, "आहे केहन नगर केर लोक, पैंचो नहि भेटए हे!" (इस नगर के लोग कैसे हैं, कोई किसी को उधार तक नहीं देते)।

विद्यापति के गीतों में शिव का योगी रूप सर्वकालिक है। शिव और पार्वती के

विवाह का निश्चय हुआ। विवाह से पहले शिव अपनी भावी पत्नी के रूप-गुण और शुचि-आचार का पता लगाना चाहते थे लेकिन उनका न कोई संगी-साथी था और न कोई सगा-संबंधी। आखिर स्वयं योगी का रूप धर कर पहुँच गए पार्वती के यहाँ। आगंतुक योगी के लिए पार्वती भिक्षा लेकर सामने आयी। उसने योगी के अंतर्हित रूप को पहचान लिया और शिव की सुंदरता देख कर मूर्च्छित हो गयी।

रूपांकन : महादेव



लोग दौड़े। किसी ने कहा, वैद्य को बुलाओ, किसी ने कहा झाड़-फूँक वाले को बुलाओ। किसी ने कहा, यह उस योगी की ही करतूत है, उसीको पकड़ कर लाओ। विद्यापति कहते हैं, "हे पार्वती की माँ वृजरानी, सुनो, वह योगी नहीं हैं, वह तो त्रिभुवन दानी शिव हैं।"

मिथिला में जब किसी परिवार में मुंडन या विवाह का आयोजन होता है तो घर की भित्तियों पर महादेव के चित्र का आलेखन अवश्य होता है। वह 'कामेश्वर' हैं, प्रेममय दांपत्य जीवन के आदर्श। उनकी पत्नी उमा दीर्घ और सुखी दांपत्य जीवन का वर देने वाली देवी हैं, इसीलिए मैथिल कन्याएँ कौमार्यावस्था में गौरी-पूजन करती हैं ताकि मनोवांछित वर की प्राप्ति हो। गौरी-पूजन का नित्यक्रम विवाह के तुरंत बाद से शुरू होता है और तब तक चलता है जब तक कोई स्त्री सधवा रहती है अथवा स्वयं जीवित रहती है। लोकगीतों और दंतकथाओं में शिव महादेव को भगवान से अधिक लोगों के 'बाबा', भोलाबाबा के रूप में जाना जाता है जो सुख-दुःख, हर हाल में लोगों के संग रहता है और उनके कष्ट को दूर करता है। वह स्वयं गरीब, किंतु लोगों के लिए औढरदानी हैं।

पंचानन रूप शिव का तांत्रिक स्वरूप है। तंत्र में शिव को पाँच मुखवाला बताया गया है। शिव के पाँचों मुख के नाम इस प्रकार बतलाए गए हैं सद्योजात, बामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईशान। प्राचीन काल से ही मिथिला में शाक्त धर्म का प्रचार रहा है। आज भी मिथिला के सभी संस्कार और अधिकांश पर्व-त्योहार तंत्राधारित हैं। यही कारण है कि सांस्कारिक और धार्मिक अवसरों पर जिन अरिपन अथवा भूमि-चित्रों का आलेखन होता है, वे सभी वस्तुतः तांत्रिक चित्र हैं। विशेष रूप से वैवाहिक अरिपनों के देवता शिव और शक्ति तथा दशमहाविद्या की देवियाँ हैं। मिथिला चित्रकला का सर्वाधिक लोकप्रिय चित्र 'कोबर' (इसका वर्णन 'अरिपन' अध्याय में किया गया है) असल में शिव-शक्ति या योग-योगिनी का आवास है जिसे योगिनी-चक्र के रूप में जाना जाता है। कोबर के शीर्ष भाग में 'मणिपद्म' नामक आसन पर अवस्थित पंचमुख शिव के संग पार्वती नहीं, नीलसरस्वती नामक महायोगिनी वास करती है। तांत्रिक ग्रंथों के अनुसार, विश्वसृष्टि के पश्चात परमेश्वर ने सबसे पहले महाज्ञान का संचार करने हेतु दस शिव के रूप में अपने आप को प्रकट किया और प्रत्येक को अविभक्त महाज्ञान का एक-एक अंश प्रदान किया। इसी अविभक्त महाज्ञान को शैवागम या शैवतंत्र कहा जाता है। वेद जिस प्रकार वास्तव में एक है और अखंड महाज्ञान स्वरूप है किंतु विभक्त हो कर तीन या चार नामों से प्रकट हुआ है, उसी तरह मूल शिवागम भी वास्तव में एक होते हुए भी विभक्त हो कर दस आगम के रूप में प्रसिद्ध हुआ। इन सभी आगम धाराओं में



प्रत्येक की अपनी-अपनी परंपरा है। मिथिला चित्र के शिव-प्रसंगों में, शिव-विवाह में भूत-प्रेतों की वारात के साथ स्वयं पंचानन शिव को नाचते दिखलाया जाता है।

अर्धनारीश्वर का अर्थ है शिव और पार्वती का संयुक्त रूप। कहा गया है कि शिव जब शक्ति के संग संयुक्त रहते हैं तभी शिव नहीं तो शव, निष्क्रिय, निष्फल रहते हैं। दोनों के संयुक्त रूप को पुरुष और प्रकृति का शाश्वत मिलन कहा गया है। अर्धनारीश्वर के पुरुष अंश से रुद्र उत्पन्न हुआ और स्त्री अंश से शक्ति प्रकट हुई। प्रसिद्ध है कि प्रजापति सृष्टि के आरंभ में एक था। जब उसके मन में सृष्टि की इच्छा हुई तब उसने अपने शरीर के दो खंड करके आधे में पुरुष और आधे में स्त्री-भाव का निर्माण किया। शिव के अर्धनारीश्वर भाव का सृष्टि-प्रक्रिया में महत्वपूर्ण स्थान है। कथा है कि प्रारंभ में ब्रह्मा केवल पुरुष-भाव से सृष्टि करते थे। इस विधि से उन्हें प्रजा-सृष्टि के कार्य में सफलता नहीं मिली। अंत में उन्होंने शिव की आराधना की। शिव ने उन्हें अर्धनारीश्वर स्वरूप में दर्शन दिया जिससे ब्रह्मा को सृष्टि-विधान की सही युक्ति ज्ञात हुई और स्त्री-पुरुष के संयोग से सृष्टि का क्रम आगे बढ़ा।



पाठ-3

विष्णु

विष्णु का प्रथम उल्लेख ऋग्वेद में हुआ है जहाँ उसे सौर देवता के रूप में मान्यता है। सर्वत्र फैलने वाली व्यापिनी शक्ति से संपन्न सूर्य ही वेदों में 'विष्णु' नाम से चर्चित हुआ है। ऋग्वेद में जिस सविता की प्रशंसा-अभ्यर्थना की गयी है, 'तीन डगों' में समस्त विश्व को माप डालना उस विष्णु का विशिष्ट कार्य है। प्रायः इसी अवधारणा की पुष्टि बाद के पुराणकारों ने विष्णु के 'वामनावतार' में की है जब उसने राजा बलि से 'तीन डग भूमि' माँग कर उसे त्रैलोक्य-विहीन कर दिया।

रूपांकन : विष्णु



वर्त्तमान पौराणिक धर्म-परंपरा में वैष्णव अवधारणा का न्यास भारतीय इतिहास के गुप्तकाल : चौथी शताब्दी में हुआ। इस धारा में 'ब्रह्मा-विष्णु-शिव' को सर्वाधिक प्रधान देवता माना गया है। इन तीनों देवों के सामूहिक अभिधान को 'त्रिमूर्ति' कहते हैं। इनमें ब्रह्मा उत्पत्ति के देवता हैं जो विष्णु के नाभि-कमल पर स्थित रह कर समग्र विश्व की रचना करते हैं। विष्णु सृष्टि के क्रम को जारी रखने तथा विश्व-प्रजा का पालन करने के कार्य करते हैं जबकि शिव उस प्रजा का संहार तथा लय करते हैं ताकि सृष्टि का क्रम सतत रूप से आगे बढता रहे।

पौराणिक साहित्यों में विष्णु के सहस्र नामों का उल्लेख हुआ है। अमरकोश में विष्णु के नामों का उल्लेख इस प्रकार हुआ है विष्णु, नारायण, कृष्ण, वैकुंठ, विष्टरश्रवा, दामोदर, हृषिकेश, केशव, माधव, स्वभूः, दैत्यारि, पुंडरीकाक्ष, गोविंद, गरुड़ध्वज, पीतांबर, अच्युत, जनार्दन, उपेंद्र, इंद्रावरज, चक्रपाणि, चतुर्भुज, पद्मनाभ, मधुरिपु, वासुदेव, त्रिविक्रम, देवकीनंदन, शौरि, पुरुषोत्तम, श्रीपति, वनमाली, वलिध्वंशी, कंसाराति, अधोक्षज, विश्वंभर, विधु, श्रीवत्सलांछन आदि।

वह जगन्नाथ हैं। सभी लोकों के स्वामी 'नारायण' (नार = जल; अयन =घर, स्थान; नारायण = जल पर निवास करने वाला) क्षीर-सागर में शेषनाग के ऊपर शयन करते हैं और 'शेषशायी' के नाम से प्रख्यात हैं। इनकी पत्नी लक्ष्मी शोभा, समृद्धि और संपत्ति की अधिष्ठात्री देवी हैं।

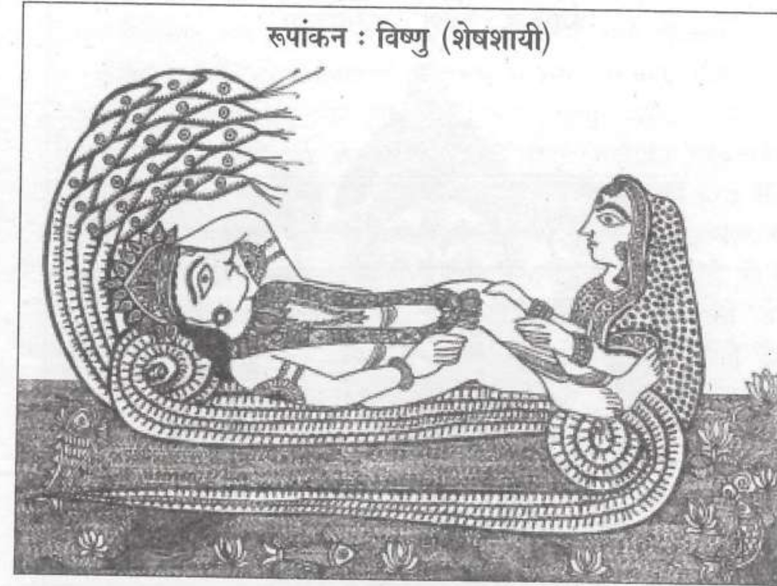
विष्णु के अवतार

अवतार का अर्थ होता है किसी देवता का लौकिक शरीर धारण करना, मरणशील प्राणी की तरह जन्म लेना। इस प्रकार भगवान का अपनी स्वातंत्र्य शक्ति के द्वारा भौतिक जगत में प्रकट होना 'अवतार' कहलाता है। पौराणिक शास्त्रों में अवतारवाद की विस्तृत व्याख्या की गयीं है, किंतु इसके मौलिक और प्राचीनतम आधार हमें वैदिक साहित्य में प्राप्त होते हैं। प्रजापति ने संसार के कल्याण के लिए अनेक बार अनेक रूपों को धारण किया।

पुराणों का मत है कि 'ऋत' (सत्य, उचित, दैवी नियम) के कायम रहने पर ही समाज या संसार की व्यवस्था बनी रहती है, और किसी कारणवश जब समाज में ऋत के स्थान पर अनृत या धर्म के स्थान पर अधर्म की प्रबलता हो जाती है तो संसार का विनाश अवश्यंभावी हो जाता है। इस अवस्था से समाज को उबारने के लिए भगवान अवतार ग्रहण करते हैं।

श्रीमद्भागवत पुराण में विष्णु के चौबीस अवतारों का उल्लेख है, किंतु 'दशावतार' की कल्पना सर्वाधिक लोकप्रिय है। दशावतार के अंतर्गत दो पानी वाले

रूपांकन : विष्णु (शेषशायी)



जीव मत्स्य और कच्छप; दो जलथलचारी जीव वराह तथा नृसिंह; लघुप्राणी वामन; तीन राम परशुराम, दाशरथि राम और बलराम; बुद्ध तथा कल्कि आते हैं। महाभारत में बुद्ध के स्थान पर 'हंस' को रखा गया है; भागवत में कृष्ण के स्थान पर बलराम को लिया गया है जबकि मिथिला में कृष्ण को दशावतार का प्रमुख देवता माना गया है। मिथिला के कृष्ण मात्र एक अवतारी नहीं बल्कि सद्यः परमेश्वर हैं। मैथिल कर्ण-कायस्थों के विवाह में (वर पक्ष वाले) 'सिंदूरदान' के लिए सिंदूर के छह पॉकेट बना कर ले जाते हैं। ये पॉकेट कोबर, कमलदह, बर्रे, बाँस और दशावतार चित्रित कागजों में विशेष रूप से लपेटे रहते हैं। दशावतार का यह स्वरूप कवि जयदेव (ग्यारहवीं शताब्दी) की विश्वविख्यात रचना 'गीतगोविंद' से प्रेरित है। मिथिला में कायस्थों के वैवाहिक कक्ष 'कोबरघर' की भित्ति पर दशावतार का लेखन अनिवार्य माना गया है।

मत्स्यावतार

भगवान विष्णु का प्रथम अवतार मत्स्यावतार है। प्रलयकाल उपस्थित होने पर जब त्रिलोक जल-मग्न हो गया तब महासमुद्र में सोये हुए ब्रह्मा के मुख से चार वेदों की उत्पत्ति हुई। उन वेदों को हयग्रीव नामक दानव ने चुरा लिया। इन्हीं वेदों के उद्धार के लिए विष्णु ने मत्स्यावतार धारण किया। मत्स्यावतार की कथा से सृष्टि

रूपांकन : विष्णु : मत्स्यावतार



के आदि विकास पर प्रकाश पड़ता है। वैज्ञानिक मान्यताओं के आधार पर सृष्टि का प्रथम जीव मत्स्य ही है।

कच्छप अवतार

विष्णु का दूसरा अवतार कच्छप कहा गया है। पौराणिक कथाओं के अनुसार, देवता और दानवों के बीच वर्चस्व को लेकर प्रायः युद्ध होते रहते थे। इन देवासुर युद्धों से दोनों पक्षों के धन और जन की अपार क्षति होती रहती थी। उस जन-हानि से बचने के लिए, अमरत्व प्रदान करने वाली किसी शक्ति की खोज में, देवगण पितामह ब्रह्मा के पास गए। देवताओं की चिंता से सहमत ब्रह्मा ने उन्हें सलाह दी ''देवताओ! आप लोग दानवराज बलि से मित्रतापूर्ण संबंध बढावें और

दानवों के साथ मिल कर समुद्र मथने की तैयारी करें। समुद्र-मंथन के अंत में अमृत निकलेगा। उस अमृत का पान करने से आप सभी अमर हो जायेंगे।''

ब्रह्मा के निर्देशानुसार देवताओं ने दानवों से समझौता किया और उन्हीं के साथ मिल कर समुद्र-मंथन की तैयारी की। उस अभूतपूर्व कठिन कार्य के लिए वासुकि नाग की रस्सी और मंदराचल पर्वत को मथानी बना कर समुद्र-मंथन का कार्य प्रारंभ हुआ। परंतु जैसे ही मंथन शुरू हुआ कि मंदराचल ही समुद्र में डूबने लगा। इस स्थिति से निराश देवताओं ने भगवान विष्णु से सहायता माँगी। अंतर्यामी भगवान विष्णु ने कार्यसिद्धि के लिए श्रीगणेश की पूजा करने की सलाह दी। विष्णु की सलाह पर देवगण गणेश-पूजन में लग गए। इसी अभ्यंतर लीलाधारी भगवान विष्णु ने कच्छप रूप धारण कर मंदराचल को अपनी पीठ पर उठा लिया और इसके बाद पुनः मंथन प्रारंभ हुआ।

रूपांकन : विष्णु : कच्छपावतार



वासुकि नाग को सिर की तरफ से दानव और पूँछ की तरफ से देवताओं ने पकड़ रखा था। मथते-मथते बहुत समय बीत गया फिर भी समुद्र से कुछ नहीं प्राप्त हुआ। तब श्रीहरि विष्णु ने सहस्रबाहु बन कर दोनों तरफ से मथना प्रारंभ किया। समुद्र के प्रचंड मंथन से चौदह प्रकार की अनुपम वस्तुएँ प्राप्त हुईं विष, कामधेनु गाय, उच्चैःश्रवा घोड़ा, ऐरावत हाथी, कौस्तुभ मणि, कल्पवृक्ष, अप्सराएँ, लक्ष्मी, सुरा, धनुष, चंद्रमा, शंख, धन्वंतरि और अमृत। देवताओं ने छल से सारा अमृत पी लिया, वे अमर हो गए।

वाराह अवतार

विष्णु का तीसरा अवतार वाराह अवतार है। एक बार दानव हिरण्याक्ष पृथ्वी को लेकर पाताल में छिप गया था। पृथ्वी का उद्धार करने के लिए उस समय भगवान

रूपांकन : विष्णु : वाराह अवतार



विष्णु ने वाराह रूप धारण किया। उन्होंने हिरण्याक्ष का वध करके पृथ्वी को संकट से मुक्त किया था। पुराणों में कथा है कि एक बार सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने मनु को अपनी पत्नी शतरूपा से अपने ही समान गुण-संपन्न संतान उत्पन्न करके पृथ्वी के पालन का आदेश दिया। उस समय हिरण्याक्ष ने पृथ्वी को पाताल की अथाह जलराशि में छिपा दिया था। इसलिए मनु ने सकुचाते हुए ब्रह्मा से पूछा कि जब पृथ्वी ही नहीं बची तो उनकी संतान कहाँ वास करेगी। मनु का यह प्रश्न सुन कर ब्रह्मा चिंता में पड़ गए और सोचने लगे कि पृथ्वी को किस प्रकार रसातल से बाहर निकाला जाए। उसी समय ब्रह्मा की नाक से अचानक अंगूठे के बराबर आकार का एक वाराह शिशु निकला। धीरे-धीरे वह शिशु विशाल आकार का हो गया। वही वाराह रूप भगवान वाण के समान पैने अपने खुरों से जल को चीरते हुए उस अथाह जलराशि के पार पहुँचे और जल में डूबी हुई पृथ्वी को अपनी दाढ़ पर उठाए रसातल से बाहर आए। रसातल से बाहर निकल कर वाराह भगवान ने अपने खुरों से जल को स्तंभित कर पृथ्वी को पुनः स्थापित किया। वाराह रूप विष्णु को पुराणों में आदिवाराह भी कहा गया है।

पौराणिक कथाओं के अनुसार, पृथ्वी को पाताल से मुक्त कराने के क्रम में वाराह रूप विष्णु ने पृथ्वी के साथ संभोग किया था जिससे नरकासुर का जन्म हुआ। आगे चल कर यह असुर प्राग्ज्योतिषपुर (आसाम) का राजा हुआ। इसने अनेक राजाओं और तपस्वियों की सोलह हजार स्त्रियों को बंदी बना कर रखा था। इंद्र की प्रार्थना पर कृष्ण ने अपने सुदर्शन चक्र से नरकासुर का वध कर दिया। वंधन-मुक्त सभी सोलह हजार स्त्रियों की प्रार्थना पर कृष्ण उन्हें अपनी पत्नी बना कर द्वारिका ले आए।

नृसिंह अवतार

विष्णु का चौथा अवतार नृसिंह अवतार है। पुराणों में कथा है कि ब्रह्मा से वर प्राप्त कर दानवराज हिरण्यकशिपु समझने लगा था कि वह अमर हो गया है और वह इसी अहंकार में देवताओं तथा मनुष्यों को बहुत कष्ट देने लगा था। दानवों के घोर अत्याचार से पीड़ित देवताओं ने उद्धार के लिए विष्णु की प्रार्थना की। देवताओं की प्रार्थना पर विष्णु ने नृसिंह का रूप धारण किया, आधा मनुष्य और आधा सिंह का रूप। इसी रूप में दानवराज का वध करने के लिए विष्णु हिरण्यकशिपु की सभा में पहुँचे। नृसिंह अवतार विष्णु ने हिरण्यकशिपु का उदर फाड़ कर उसे मृत्यु प्रदान किया और देवों के कष्ट का निवारण किया। नरसिंह भगवान विष्णु का दूसरा नाम नरहरि भी है।

रूपांकन : विष्णु : नृसिंह अवतार



वामन अवतार

विष्णु का पाँचवाँ अवतार वामनावतार है। पुराणों के अनुसार, कश्यप ऋषि की दो पत्नियाँ थीं अदिति और दिति। इंद्र, वरुण आदि देवता ऋग्वेद की मातृशक्ति या वेदमातृ अदिति और कश्यप की संतान हैं और दैत्य-असुर के माता-पिता दिति और कश्यप हैं। कथा है कि एक बार बलवान दैत्यों ने बलि के नेतृत्व में स्वर्ग पर अधिकार कर लिया। स्वर्गपति देवराज इंद्र शक्तिहीन भिखारी की तरह दर-दर भटकने लगे। दैत्यों ने वेदमाता अदिति को भी बहुत तरह से कष्ट दिया और उनका सर्वस्व हरण कर लिया। तब माता अदिति ने भगवान विष्णु की आराधना की। व्रत के अंतिम दिन भगवान ने प्रकट हो कर अदिति से कहा, "देवि! चिंता मत करो। मैं तुम्हारे पुत्ररूप में जन्म लूँगा और इंद्र का छोटा भाई उपेंद्र बन कर उनका हित करूँगा।" इतना कह कर विष्णु अंतर्धान हो गए।

रूपांकन : विष्णु : वामनावतार



अपने वचनानुसार भगवान ने विजया द्वादसी के दिन अभिजित मुहूर्त में अदिति के गर्भ से जन्म लिया। वे चतुर्भुज थे और उनके हाथों में शंख, चक्र, गदा एवं कमल सुशोभित हो रहे थे। भगवान चतुर्भुज ने कश्यप और अदिति के देखते-देखते वामन ब्रह्मचारी का रूप धारण कर लिया। उसी समय दैत्यों के राजा बलि नर्मदा नदी के तट पर यज्ञ का अनुष्ठान कर रहे थे। भगवान वामन ने यज्ञ-स्थल के लिए प्रस्थान किया। उनकी कमर में मूँज की मेखला थी और वह यज्ञोपवित धारण किए हुए थे। उनके शरीर पर मृगचर्म और सिर पर जटा थी। इसी प्रकार बौने ब्राह्मण के वेश में ब्रह्मचारी बने हुए भगवान ने बलि के यज्ञ-स्थल में प्रवेश किया। लीलाधारी वामन को देख कर बलि का हृदय बहुत प्रसन्न हुआ। उसने भगवान को उत्तम आसन पर बैठाया और अनेक प्रकार से अभ्यागत ब्रह्मचारी की पूजा की।

अतिथि सत्कार के पश्चात दानवराज बलि ने वामन भगवान से कुछ भी स्वेच्छया माँगने का अनुरोध किया। बलि के आग्रह करने पर विष्णु ने मात्र तीन पग भूमि की माँग की। दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य ने दानवेंद्र बलि से वामन को यह दान देने के लिए मना किया किंतु बलि ने अपना वचन नहीं तोड़ा। वामन भगवान ने अपने शरीर का विस्तार करके एक डग से बलि की समस्त पृथ्वी, शरीर से आकाश और भुजाओं से दिशाएँ घेर कर दूसरे डग से स्वर्ग को नाप लिया। तीसरा डग रखने को कोई स्थान ही नहीं बचा। तब बलि ने 'तीन पग दान' का अपना वचन पूरा करने के लिए तीसरा पग अपने शीश पर रखने को कहा। इस प्रकार दानवेंद्र बलि ने अपना शरीर सहित सर्वस्व दान कर वामन भगवान को प्रसन्न किया। भगवान ने प्रसन्न हो कर उसे सावर्णि मन्वंतर में इंद्र होने तथा विश्वकर्मा द्वारा निर्मित सुतल लोक में रहने का वरदान दिया।

परशुराम अवतार

विष्णु का छठा अवतार परशुराम अवतार है। पौराणिक कथा है कि हैहय वंशीय क्षत्रिय राजाओं का अत्याचार बहुत बढ़ गया था। चारों दिशाओं में सदाचारी प्रजा त्राहि-त्राहि

रूपांकन : विष्णु : परशुरामावतार



करने लगी। ऐसे समय में भगवान विष्णु परशुराम के रूप में ऋषि जमदग्नि की पत्नी रेणुका के गर्भ से जन्म ले कर अवतार धारण किए। इनका वास्तविक नाम तो राम था, किंतु इनकी शिवभक्ति और कठोर साधना से प्रसन्न हो कर औढरदानी शंकर ने इन्हें अपना अमोघ अस्त्र 'परशु' प्रदान किया था जिसे ये सदैव धारण किए रहते थे। इस गुण के कारण ये परशुराम के नाम से प्रख्यात हुए।

इन्होंने अपने पिता जमदग्नि के वध को निमित्त बना कर एक्कीस बार पृथ्वी के अत्याचारी क्षत्रियों का समूल वध कर दिया। इस प्रकार भगवान ने अत्याचारियों के भार से पृथ्वी को मुक्त किया। रामावतार में रामचंद्र द्वारा शिव का धनुष तोड़ने पर परशुराम क्रुद्ध हो कर आये थे, किंतु परीक्षा के बाद जब उन्हें ज्ञान हुआ कि रामचंद्र विष्णु के अवतार हैं तो उनकी वंदना करके परशुराम तपस्या करने महेंद्र पर्वत पर चले गए।

रामावतार

विष्णु का सातवाँ अवतार रामावतार है। प्राचीन कथाओं के अनुसार, श्रीहरि विष्णु के दो सेवक द्वारपाल थे जिनके नाम जय-विजय थे। सनकादि ब्रह्मर्षियों के शाप से वे घोर निशाचर कुल में पैदा हुए और उनके नाम रावण और कुंभकर्ण पड़े। वे अत्यंत क्रूर और अत्याचारी शासक थे। उनके अन्याय और अत्याचार से पृथ्वी काँप उठी। पृथ्वी असुर-समाज के बोझ से मुक्त होना चाहती थी। इस कामना से वह ब्रह्मादि अनेक देवताओं के साथ श्रीहरि विष्णु की शरण में गयी। पृथ्वी और देवताओं की सम्मिलित प्रार्थना से परब्रह्म परमेश्वर ने अयोध्या के राजा दशरथ की महारानी कौशल्या के गर्भ से राम के रूप में अवतार लिया।

रामकथा पर आधारित साहित्यों का विश्व की अनेक भाषाओं में प्रचुर भंडार है। वाल्मीकि ऋषि अयोध्या के राजा दशरथ के समकालीन थे। उनके द्वारा रचित 'रामायण' रामकथा का प्राचीनतम महाकाव्य है। मिथिला की प्राचीन राजधानी जनकपुर में सीताजी का स्वयंवर हो रहा था। वहाँ भगवान शंकर का विशाल धनुष रखा गया था जिसे उठाने और उस पर प्रत्यंचा चढ़ाने में सभी वीर असफल रहे। श्रीराम ने उस धनुष को तोड़ कर सीताजी को प्राप्त किया।

राजा दशरथ की आज्ञा से श्रीराम को चौदह वर्षों का वनवास हुआ। पिता की आज्ञा को सर्वोपरि मान कर राम ने राज्य-सुख और सत्ता का त्याग कर अपनी पत्नी सीता और छोटे भाई लक्ष्मण के साथ चौदह वर्ष वनों में रह कर बिताया। वन में ही लंकापति रावण ने छल से सीता का हरण कर लिया। सीताजी के वियोग में श्रीराम अपने भाई लक्ष्मण के साथ दुःख से व्याकुल हो कर वन-वन भटकते रहे। हनुमान सीता की खोज में लंका

रूपांकन : विष्णु : रामावतार



गए। वहाँ सीताजी से मिल कर उन्हें श्रीराम का संदेश सुनाया। हनुमान के लंका से लौटने के बाद रावण की राक्षसी सेना और श्रीराम की वानरी सेना के बीच भयंकर युद्ध हुआ। इस युद्ध में राक्षसों का सबंधु-बांधव सर्वनाश हो गया। श्रीराम विजयी हुए। तब तक वनवास की अवधि भी बीत गयी। अयोध्या लौट कर लीलाधारी भगवान पुरुषोत्तम श्रीराम ने रामराज्य की स्थापना की।

कृष्णावतार

पौराणिक आख्यानों में **श्रीकृष्ण** विष्णु के आठवें अवतार के रूप में प्रसिद्ध हैं। बहुत विद्वान कृष्ण को सदेह विष्णु मान कर उपासना करते हैं और 'बलराम' को कृष्ण के स्थान पर आठवाँ अवतार मानते हैं। वर्त्तमान हिंदू समाज में संभवतः शिव

के बाद सर्वाधिक पूज्य देवता कृष्ण हैं। साहित्य और कला के क्षेत्र में भी कृष्ण का महत्व अधिक है।

कृष्ण का जन्म मथुरा के अत्याचारी शासक कंस के कारागार में हुआ था। कथा है कि राजा शूरसेन के पुत्र वसुदेव जब देवकी से विवाह के बाद विदाई करा कर उसे अपने घर ला रहे थे तो देवकी का भाई, राजा उग्रसेन का पुत्र कंस स्वयं अपनी बहन को रथ पर बैठा कर उसे ससुराल ले जाने के लिए प्रस्तुत हुआ। उसी समय कंस को संबोधित करके आकाशवाणी हुई "अरे मुर्ख! जिसे तुम रथ में बिठा कर लिये जा रहा है, उसीकी आठवीं संतान तुम्हें मार डालेगा।" आकाशवाणी सुन कर कंस भयभीत हो गया और वह देवकी को ही मार डालने को उद्यत हो गया। वसुदेव के अनुनय-विनय करने और शर्त्त करने पर कि देवकी को जब कभी संतान होगी वह उसे कंस को सुपुर्द कर देंगे, कंस ने देवकी की हत्या का विचार तो छोड़ दिया किंतु उसने बहन-बहनोई को कारागार में बंद कर दिया। कारागार में बंद रहते हुए ही वसुदेव और देवकी के सात पुत्र हुए जिन्हें कंस बिना देर किए मारता गया।

रूपांकन : विष्णु : कृष्णावतार



रूपांकन : विष्णु : कृष्णावतार



समय आने पर काल-कोठरी के भीतर बरसात की एक घनघोर रात को देवकी का आठवाँ पुत्र भी उत्पन्न हुआ। बच्चा के जन्म लेते ही योगमाया की प्रेरणा से कारागार के द्वार खुल गए और सभी प्रहरी-रक्षक नींद में बेसुध जहाँ-तहाँ पसर गए। अवसर अनुकूल देख कर वसुदेव ने नवजात शिशु को एक टोकरी में रख कर, यमुना नदी के पार रहने वाले अपने मित्र नंद के घर के लिए, साहस और आत्मविश्वास के साथ विदा हुए। उसी समय नंद की पत्नी यशोदा ने भी एक पुत्री को जन्म दिया था। वसुदेव जब नंद के घर पहुँचे उस समय यशोदा और अन्य सभी लोग गहरी निद्रा में सोये हुए थे। वसुदेव ने चुपचाप अपने शिशु को यशोदा की बगल में सुला दिया और उनकी नवजात कन्या को ले कर वे कारागार में लौट आये। सुबह होते ही कंस आठवें शिशु के जन्म का समाचार सुन कर कारागार में आया और देवकी से बच्चा ले लिया। एक अनुश्रुति के अनुसार, कंस ने जैसे ही

शिशु को पत्थर पर पटकना चाहा, हाथ से छिटक कर वह बच्ची आकाश की ओर उड़ गयी और विंध्याचल पर्वत पर विंध्यवासिनी देवी के रूप में प्रकट हुई।

इधर कंस अपने मृत्युदाता भाँजे की खोज में निरंतर शिशु-वध में संलग्न था और उधर गोकुल में वही बालक कृष्ण नाम से अपने अत्याचारी मामा की नजर बचा कर, यशोदा और नंदबाबा के स्नेह की छाँव में दैवी गति से बढ़ रहा था। गहरे नीले सागर के रंग वाला, निरभ्र नीले आकाश के रंग का वह बालक कृष्ण अप्रतिम सौंदर्य और शक्ति तथा असाधारण प्रतिभा के साथ-साथ बाल-सुलभ नटखटपन से समस्त गोकुल वासियों का प्रणाधार बन चुका था। कृष्ण का संपूर्ण जीवन अन्यायियों के शमन, पर्यावरण के संरक्षण, प्रेम और ज्ञान के प्रसार तथा निर्माण के लिए ध्वंश की अमर गाथा है।

बुद्धावतार

विष्णु के नौवें अवतार **'भगवान बुद्ध'** का जन्म आज से लगभग ढाइ हजार वर्ष पूर्व कपिलवस्तु (नेपाल) के पास लुंबिनी वन में हुआ था। बुद्ध के पिता शुद्धोदन शाक्यों के राज्य कपिलवस्तु के शासक थे। बुद्ध की माता का नाम माया देवी था। माया देवी कपिलवस्तु से अपने पिता के घर जा रही थी, तभी लुंबिनी के रास्ते में, दो साल वृक्षों के बीच में बुद्ध का जन्म हुआ था। बुद्ध के बचपन का नाम सिद्धार्थ था। उनके जन्म के सातवें दिन ही उनकी माँ माया देवी का देहांत हो गया। माँ की मृत्यु के बाद सिद्धार्थ का पालन-पोषण उनकी मौसी और विमाता प्रजापति (गौतमी) ने किया।

बुद्ध बचपन से ही चिंतनशील स्वभाव के थे। लोगों के दुःख को देख कर इनका हृदय करुणा से भर जाता था और वे दुःखों से मुक्ति का उपाय खोजने के प्रति चिंतन-मग्न हो जाते थे। उनके पिता शुद्धोदन नहीं चाहते थे कि सिद्धार्थ का मन राजसी सुख और सांसारिक चक्र से विमुख हो। सांसारिक भोग-विलास में सिद्धार्थ के मन को उलझाये रखने के उद्देश्य से उनके पिता ने सोलह वर्ष की अवस्था में ही उनका विवाह रामग्राम के कालिय गणराज्य की राजकुमारी यशोधरा से कर दिया। विवाह के बाद लगभग बारह वर्षों तक सिद्धार्थ ने गृहस्थ जीवन बिताया और एक पुत्र, राहुल को जन्म दिया किंतु उनका हृदय सदैव संसार के दुःखों से अशांत ही रहा। अतः एक रात सिद्धार्थ यशोधरा और राहुल को सोता छोड़ कर ज्ञान की खोज में निकल पड़े, साधना के पथ पर।

घर छोड़ने के बाद सिद्धार्थ ज्ञान की खोज में इधर-उधर भटकते रहे। वर्षों की खोज, निराहार तपस्या और समाधि के बाद एक बैसाख पूर्णिमा के दिन उन्हें सच्चे ज्ञान का प्रकाश मिला। गया तीर्थ के जिस क्षेत्र में उन्हें ज्ञान का प्रकाश (संबोधि)

रूपांकन : विष्णु : बुद्धावतार



मिला उस क्षेत्र को 'बोधगया' और जिस वृक्ष के नीचे उन्होंने समाधि लगायी थी, उसे 'बोधिवृक्ष' कहा जाने लगा।

महात्मा बुद्ध के अनुसार, शरीर को कष्ट देने से अथवा अत्यंत भोग-विलास में रहने से मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती है। इसके लिए मध्यमार्ग को अपनाना चाहिए। उनकी शिक्षा का सार यही है कि यह संसार दुःखमय है; सांसारिक सुखों को पाने की तृष्णा ही दुःखों के मूल कारण हैं; राग, द्वेष और अहंकार के त्याग से ही जीव की मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होता है। भगवान बुद्ध ने मनुष्य की उन्नति के आठ साधन बताए हैं सत्य, नम्रता, सदाचार, सद्विचार, सद्गुण, सद्बुद्धि, ऊँचा लक्ष्य और उत्तम ध्यान।

भगवान बुद्ध आजीवन नगर-नगर घूमते हुए अपने धर्म-सिद्धांतों का प्रचार

करते रहे और असंख्य शिष्य बनाए। उनकी पत्नी, पुत्र और विमाता भी धर्म-संघ में सम्मिलित हुईं। अस्सी वर्ष की अवस्था में, कुशीनगर में बैसाख पूर्णिमा के दिन अहिंसा के अवतार भगवान बुद्ध ने अपनी जीवन-लीला समाप्त की। इस घटना को 'महापरिनिर्वाण' कहते हैं।

कल्कि अवतार

'कल्कि अवतार' विष्णु का अंतिम अवतार माना गया है। हिंदू धर्म-शास्त्रों के अनुसार, युगों की अवधारणा में वर्त्तमान समय को 'कलियुग' कहा गया है। कहा गया है कि ज्यों-ज्यों घोर कलियुग आता जाएगा, त्यों-त्यों समाज में झूठ, लोभ, लालच, व्यभिचार, भ्रष्टाचार का प्रसार बढ़ता जाएगा और धर्म, सत्य, पवित्रता, दया, क्षमा और सद्विचार का लोप होता जाएगा। इस युग में धन को मनुष्य की

रूपांकन : विष्णु : कल्कि अवतार



सबसे बड़ी योग्यता मानी जाएगी। धन और पद के लिए जो जितना छल-कपट और अनीति का सहारा लेगा उसे उतना ही व्यवहार-कुशल माना जाएगा। धन की प्रधानता के कारण हिंसा, चोरी और अनेक प्रकार के कुकर्मों को सामाजिक-नैतिक मान्यता प्राप्त हो जाएगी जबकि परोपकार, सेवा और सद्विवेक के मार्ग पर चलने वालों को पग-पग पर कष्ट का सामना करना पड़ेगा।

कल्कि पुराण के अनुसार, कलियुग का अंत होते-होते पृथ्वी पर हिंसा और जातीय संघर्ष चरम सीमा पर पहुँच जाएँगे। ऐसी विकट स्थिति में धर्म की पुनर्स्थापना के लिए विष्णु का कल्कि अवतार होगा। पुराणानुसार, इस अवतार में भगवान शंभल नगर में जन्म लेंगे; उनका वाहन देवदत्त नामक घोड़ा और अस्त्र तलवार होगी। कल्कि रूप में अवतरित हो कर विष्णु 'कलि' का नाश करेंगे। इसके बाद भूलोक के समस्त अनाचारों की समाप्ति के साथ ही सुंदर-सुखद समय का युग   सतयुग का आविर्भाव होगा।

पाठ-4

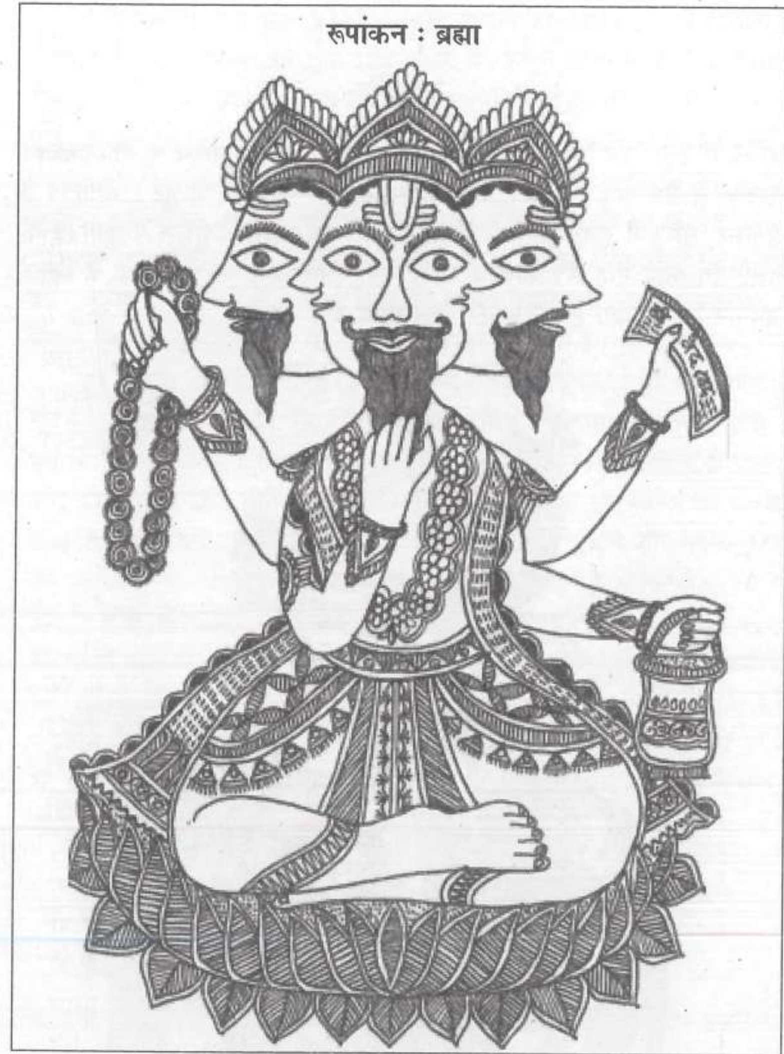
ब्रह्मा

ब्रह्मा का प्रथम उल्लेख ऋग्वेद में हुआ है, किंतु वैदिक साहित्य में उसे पौराणिक साहित्य की तरह पूजनीय नहीं माना गया है। पौराणिक ब्रह्मा सर्वोच्च त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु और शिव) में से एक है। वेद में इसे प्रजापति कहा गया है। समस्त सजीव-निर्जीव वस्तुओं से गठित इस चराचर जगत के सृष्टिकर्ता, निर्माता-शिल्पी होने के कारण ब्रह्मा को शिल्प-कलाओं का अधिष्ठाता देव भी कहा गया है।

ब्रह्मा की उत्पत्ति के संबंध में अनेक मत हैं। पौराणिक परंपराओं के अनुसार इनकी उत्पत्ति विष्णु की नाभि से निकले कमल से हुई है और उसी कमलासन पर ये अवस्थित होते हैं। मनुस्मृति के अनुसार, विशालतम स्वर्ण-अंड से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। रामायण के अनुसार, ब्रह्मा की उत्पत्ति अंतरिक्ष से हुई जिसने संसार की रचना के बाद सभी प्रकार के जीवों की उत्पत्ति के लिए काश्यप नामक पुत्र उत्पन्न किया। समस्त मानव जाति का जिससे उत्पत्ति हुई वह मनु इसी काश्यप के प्रपौत्र थे। पुराणों में नारद को ब्रह्मा का मानस पुत्र कहा गया है।

ब्रह्मा के चार मुख हैं जिनसे चारों वेदों का उदय हुआ है। इनकी दो स्त्रियाँ बतायी गई हैं   सरस्वती और गायत्री। मूर्तिविधान के अनुसार, ब्रह्मा की दाहिनी ओर सावित्री का स्थान और बाँयी ओर सरस्वती का स्थान है किंतु मत्स्य पुराण के अनुसार सावित्री का स्थान ब्रह्मा के बाँयी ओर तथा सरस्वती का दाहिनी ओर है।

रूपांकन : ब्रह्मा



कथा है कि कभी ब्रह्मा के पाँच मुख थे किंतु शिव ने अपने तीसरे नेत्र से एक मुख को नष्ट कर दिया, तब से वह चार मुख वाले, चतुरानन हो गए। वैदिक और पौराणिक ग्रंथों में ब्रह्मा अनेक नामों से जाने जाते हैं ब्रह्मा, धाता, आत्मभू, सुरज्येष्ठ, परमेष्ठी, पितामह, हिरण्यगर्भ, लोकेश, स्वयंभू, चतुरानन, अब्जयोनि, द्रुहिन, विरिंचि, कमलासन, स्रष्टा, प्रजापति, विधि, विधाता आदि।

पाठ-5

कामदेव

ऋग्वेद में इच्छा की उत्पत्ति का उल्लेख हुआ है। परवर्त्ती साहित्य में यह इच्छा या कामना ही प्रेम और सौंदर्य के देवता **कामदेव** के रूप में प्रसिद्ध हुई। अथर्ववेद के अनुसार, सृष्टि में सबसे पहले काम की उत्पत्ति हुई। हरिवंश पुराण में कामदेव को लक्ष्मी-पुत्र कहा गया है। कामदेव को आत्मभू और अज भी कहा गया है जिससे अनुमान किया जाता है कि इनका जन्म बिना माता-पिता के हुआ।

रूपांकन : पंचकाम (कामदेव)



पौराणिक ग्रंथों में कामदेव की स्त्री को रति या रेवा कहा गया है। वसंत कामदेव का सहयोगी है तथा कोकिल और शुक इनके वाहन हैं। इनकी ध्वजा में मकर का चिन्ह है जिससे इनका नाम मकरकेतु, मकरकेतन या मकरध्वज पड़ा। कामदेव पाँच तरह के फूलों के वाण और धनुष धारण करने के कारण 'पंचवाण' भी कहलाते हैं। इन वाणों से आघात कर ये किसी के हृदय में काम-भावना का संचार करते हैं। कुछ विद्वान इन पाँच फूलों में लाल कमल, अशोक, चमेली, नील कमल और आम्रमंजरी को शामिल करते हैं तो कुछ विद्वान पाटल, चंपा, केवड़ा, कमल और आम्रमंजरी को। विश्वास है कि कामदेव इन पुष्प-वाणों से किसी के हृदय में उन्मादन, शोषण, तपन, स्तंभन और सम्मोहन की स्थिति पैदा कर देते हैं जिससे वह व्यक्ति कामातुर हो जाता है।

इस पुस्तक में प्रदर्शित कामदेव का स्वरूप मिथिला चित्रकला का एक महत्वपूर्ण संदर्भ है जिसमें कामदेव को पाँच स्त्रियों से बनी हथिनी पर सवार दिखलाया जाता है। इस चित्र का आलेखन अनिवार्यतः कोबरघर में उस तरफ की भित्ति पर किया जाता है जहाँ वर-वधू की दृष्टि सोते-जागते उस पर पड़े। कामदेव के इस स्वरूप को **पंचकाम** कहा जाता है। मिथिला चित्र में हाथी को यौनसुख, शक्ति, शुभत्व और मदमत्त यौवन का प्रतीक माना गया है। कामदेव की इस हस्ति में पौराणिक पंचकन्या अहल्या, द्रौपदी, कुंती, तारा और मंदोदरी को समाया हुआ दिखलाया गया है जिनका कौमार्य विवाह के बाद भी अखंडित माना जाता है। मिथिला चित्र में पंचकन्या अक्षत-यौवना कही गयी है और पंचकाम को धर्म, अर्थ, काम के समन्वित पद का प्रतीक कहा गया है। पंचकाम के अतिरिक्त मिथिला चित्र की प्राचीन परंपरा में 'नवरस कामदेव' का उल्लेख भी पाया जाता है जिसमें कामदेव को नौ स्त्रियों से निर्मित हथिनी पर सवार दिखलाया जाता है। ये नौ स्त्रियाँ प्रतीक रूप में साहित्य के श्रृंगारादि नौ रसों के द्योतक हैं।

पाठ-6

शक्ति

भगवती भगवान की शक्ति हैं; वही प्रकृति हैं; वही ईश्वर की प्रेरणा हैं और उससे सभी काम करवाती हैं। शिव और शक्ति, पुरुष और प्रकृति या भगवान और भगवती में कोई अंतर नहीं है। वही प्रकृति अर्थात प्रभु की शक्ति है जो समस्त चराचर जगत को उत्पन्न करती है और जिसमें यह संसार समाहित रहता है। वस्तुतः यह वह आद्या शक्ति है जो इस विश्व का नियमन और संचालन करती है। यह प्रकृति ही है जिसे ईश्वर की अर्द्धांगिनी कहा गया है। धर्मशास्त्रों में ईश्वर को माता और पिता दोनों कहा गया है "त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।"

गीता में भगवान कहते हैं कि अज (जन्मरहित) होते हुए भी, निर्विकारस्वरूप होते हुए भी और समस्त भूतों के ईश्वर होते हुए भी वह अपनी प्रकृति के आधार पर स्थित हो कर, संसार से अत्याचारियों के विनाश के लिए तथा सद्व्यवस्था के विकास के लिए, अपनी माया के बल से वह बार-बार जन्म लिया करते हैं। वस्तुतः अपनी जिस शक्ति के बल से वह जन्म लेते हैं, वही माया है।

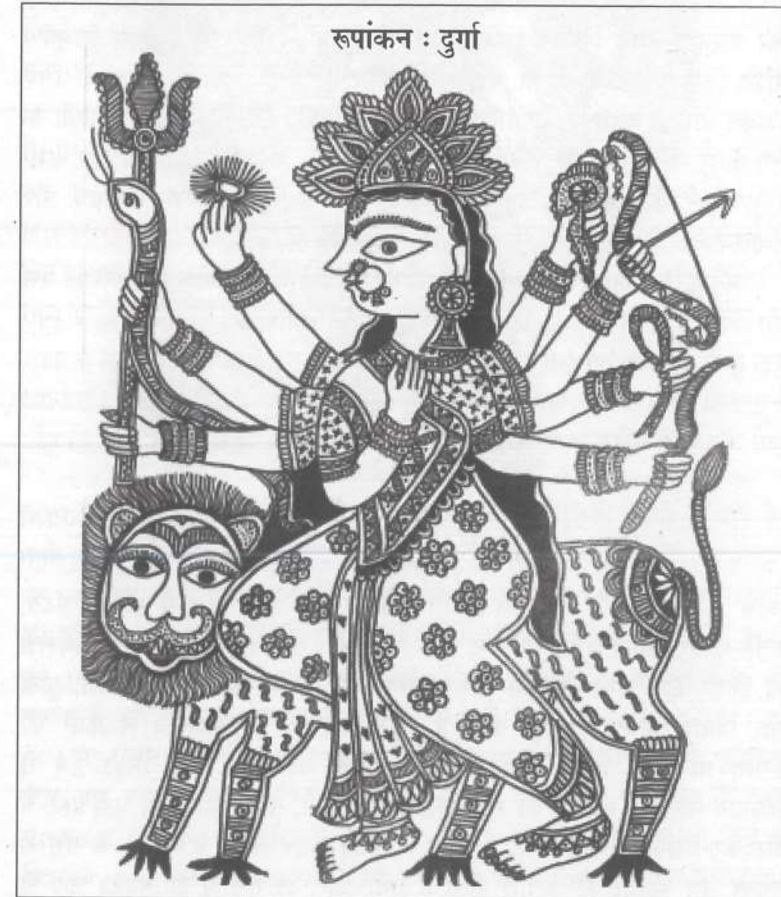
मायाशक्ति त्रिगुणात्मक है जिससे ईश्वर सृष्टि, पालन और संहार के महान कर्मों का संपादन करते हैं और सनातन धर्म-परंपरा में त्रिदेव की उपाधि धारण करते हैं। एक ही परमात्मा शक्तिरहित होने की स्थिति में निर्गुण, निराकार, निष्क्रिय, निर्लिप्त होता है और वही पुरुष (ब्रह्म) अपनी शक्ति से संपृक्त होते ही जगत-नियंता हो जाता है। एक ही महाशक्ति भिन्न-भिन्न नामों एवं रूपों में प्रकट हो कर अपने भिन्न-भिन्न कार्यों का संपादन करती है। वही शक्ति कभी सरस्वती के रूप में रचनात्मक कार्य करती है, समाजसेवा, परोपकार, शांति-स्थापना और सामूहिक कल्याण के कार्य करवाती है और दुर्गा के रूप में आततायियों का विनाश करती है, धन-पद और बल के अभिमान से चूड़ अत्याचारियों और आसुरी प्रवृत्ति से समाज का अहित करने वालों को अंततः उचित दंड दे कर काली नाम को सार्थक करती है। वही अचिंत्य विराट शक्ति भगवान और भगवती नाम से विख्यात होती है। यह आदिशक्ति केवल ईश्वर को ही विश्वकार्य की प्रेरणा नहीं देती है अपितु प्रत्येक मनुष्य के हृदय में अच्छे-बुरे का भाव उत्पन्न करके उसे तद्रूप कार्य में प्रेरित करती है।

पाठ-7
श्रीदुर्गा

दुर्गा सप्तशती के दूसरे अध्याय में कथा है कि असुरों के स्वामी महिषासुर और देवताओं के नायक इंद्र के नेतृत्व में देव और असुरों के बीच अनेक वर्षों तक भीषण युद्ध होता रहा। अंततः उस युद्ध में देवताओं की पराजय हुई और महिषासुर स्वर्ग के राज्य का स्वामी बन गया। अपनी समस्त संपदा और सत्ता से विहीन इंद्र, सूर्य, अग्नि, वायु, चंद्रमा, यम, वरुण आदि देवता दरिद्र याचक की तरह निराश्रित हो भटकने लगे। ऐसी ही स्थिति में, एक दिन ब्रह्मा की अगुआई में इंद्रादि सभी देवता विष्णु और शिव के पास गए और उन्हें अपनी विपदा सुनायी। देवताओं की प्रार्थना और उनकी विपदा सुन कर विष्णु और शिव असुरराज के प्रति क्रोधाग्नि से दहक उठे। उस समय एक अपूर्व दैवी चमत्कार हुआ। शिव, ब्रह्मा, विष्णु और इंद्रादि समस्त देवताओं के शरीर से पृथक-पृथक अद्भुत तेज निकला और पल भर में सभी देवों का तेज आपस में मिल कर एकाकार हो

गया। दहकते हुए उस पर्वताकार तेजपुंज से सभी दिशाएँ हजार-हजार सूर्य की रश्मियों की तरह प्रकाशमान हो उठीं। धीरे-धीरे वह तेजराशि नारी-स्वरूप में बदलने लगी। देवताओं ने देखा, शिव के शरीर से जो तेज निकला, उससे उस देवी का मुख प्रकट हुआ; यमराज के तेज से उसके सिर में बाल निकल आए; विष्णु के तेज से उसकी भुजाएँ उत्पन्न हुईं; चंद्रमा के तेज से दोनों स्तनों का विकास हुआ; इंद्र के तेज से शरीर का मध्य भाग प्रकट हुआ; वरुण के तेज से जंघा और पिंडली तथा पृथ्वी के तेज से नितंब भाग प्रकट हुआ; ब्रह्मा के तेज से दोनों चरण; सूर्य के तेज से पैरों की उँगलियाँ; वसुओं के तेज से हाथों की उँगलियाँ; कुबेर के तेज से नासिका; प्रजापति के तेज से देवी के दाँत; अग्नि के तेज से तीन नेत्र; वायु के तेज से कान और संध्या के तेज से भौंहें प्रकट हुए।

रूपांकन : दुर्गा



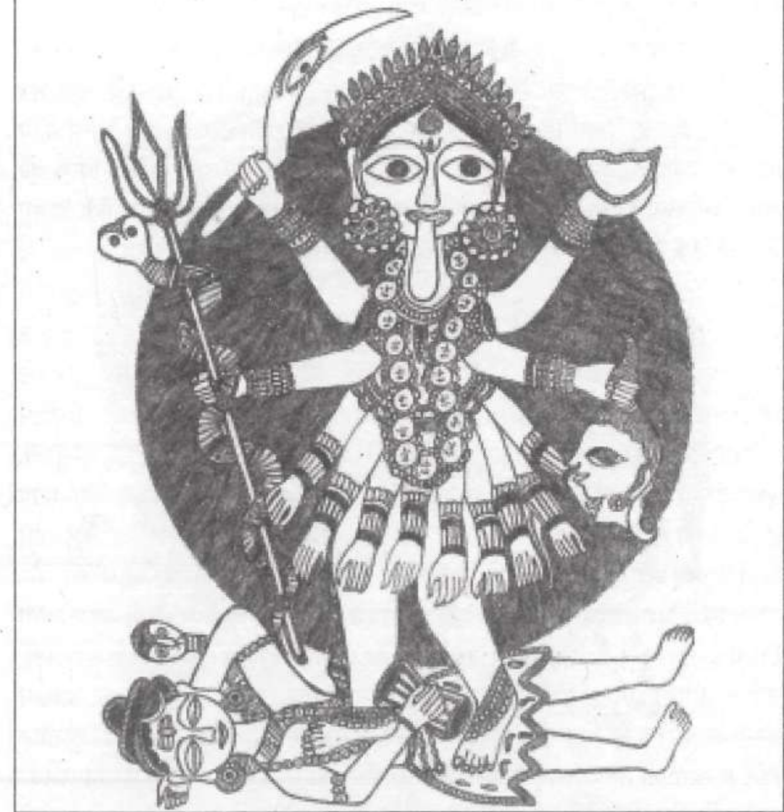
समस्त देवताओं की तेजराशि से आविर्भूत जाज्वल्यमान उस देवी को देख कर सभी देवादि-मुनिश्रेष्ठ बहुत प्रसन्न हुए। देवाधिदेव महादेव ने अपने अस्त्रों में से एक शूल उस देवी को प्रदान किया। इसके पश्चात सभी देवों ने अपने-अपने दिव्य अस्त्र शक्तिरूपा देवी को अर्पित किए। विष्णु ने अपने चक्र से एक और चक्र का निर्माण कर देवी को अर्पित किया, वरुण ने शंख और पाश प्रदान किया, अग्नि ने शक्ति अर्पित की, वायुदेव ने अपने धनुष और दिव्य वाणों से पूर्ण दो तरकस प्रदान किए, सहस्राक्ष इंद्र ने वज्र और ऐरावत हाथी से उतार कर एक घंटा अर्पित किया, यमराज ने कालदंड, प्रजापति ने स्फटिक माला, ब्रह्मा ने कमंडलु और विश्वकर्मा ने उसे फरसा प्रदान किया। अनेक दिव्य अस्त्रों से सज्जित देवी के समस्त रोम-कूपों में सूर्य ने अपनी किरणों का तेज भर दिया और महाकाल ने उसे अपनी द्युतिमान ढाल और तलवार प्रदान किया। इसके पश्चात देवताओं ने देवी को अनुपम आभूषण अर्पित किए। रत्नों के अनंत भंडार के स्वामी समुद्र ने देवी की सज्जा के लिए उज्ज्वल हार, दिव्य वस्त्र, चूड़ामणि, दो कुंडल, कड़े, अर्धचंद्र, वाहुओं की सज्जा के लिए केयूर, दोनों चरणों के लिए नूपुर, गले की हँसली, रत्नों की अंगूठियाँ और कभी न कुम्हलाने वाले कमल प्रदान किए। कुबेर ने मधु (सुरा) से भरा पानपात्र और हिमालय ने देवी की सवारी के लिए सिंह प्रदान किया।

अनेक दिव्य अस्त्रों और आभूषणों से सज्जित देवी भयंकर अट्टहास करती हुई उस ओर बढी जिधर दानवराज महिषासुर अपने महावीर सेपापतियों के साथ युद्ध के लिए अड़ा हुआ था। जगदंबा दुर्गा ने कोटि-कोटि असुर वीरों को अपने भीषण अस्त्रों के प्रहार से कुछ ही समय में काल-कवलित कर दिया। इस प्रकार अत्याचारी असुरों का सर्वनाश हुआ और पृथ्वी सहित स्वर्ग लोक में दैवी नियमों के अनुकूल व्यवस्था पुनः स्थापित हुई।

पाठ-8
महाकाली

'काल' कहते हैं समय को। हम प्रकृति में नित्य कुछ जनमते, जन्मे हुए को बढते, फलते-फूलते, पकते-झड़ते या नष्ट होते देखते हैं। यह उत्पत्ति, वृद्धि और विनाश की क्रिया कौन करता है? जो सभी सजीव और निर्जीव पदार्थों की उत्पत्ति, वृद्धि और विनाश करता है, वही काल है। कुछ दार्शनिक आकाशतत्व से काल की उत्पत्ति मानते हैं जबकि कुछ दार्शनिक 'काल' को नित्य और अखंड रूप से विद्यमान मानते हैं। काल को रात-दिन, सप्ताह-मास, वर्ष-शताब्दी या घड़ी-प्रहर में बाँट कर देखना तो मनुष्य की कल्पना है, किंतु काल अखंड है। काल के गर्भ से समस्त भूत पदार्थों की उत्पत्ति होती है तथा काल के गर्भ में ही सबका लय हो

रूपांकन : महाकाली



जाता है। कालशक्ति को अतिक्रमित करने का सामर्थ्य किसी प्राणी में नहीं है। काल का दूसरा नाम रुद्र है; शिव ही महाकाल है। पुराणों में काल को 'सर्वांतकृत यम' भी कहा गया है। संहार की भैरवी मूर्ति ही काल का रूप है। 'काली' संहार की मूर्ति है, इसी कारण इसके साथ सर्वांतकारी काल का घनिष्ठ संबंध है। काली की भयंकर विकराल मूर्ति तथा महाकाल की रुद्र मूर्ति दोनों ही महाप्रलय की द्योतक हैं, और जो काल के ऊपर प्रतिष्ठित है, वही काली है।

इस संसार में हम हर तरफ शक्ति के सहस्यमय खेल देखते रहते हैं; आकाश, वायु, ग्रह, नक्षत्रादि सभी शक्ति के अद्भुत खेल में संलग्न हैं। जैसे एक ही समुद्र में अनगिनत लहरें उठती-गिरती रहती हैं अथवा जिस प्रकार एक ही सूर्य से निकलने वाली किरणें समस्त संसार को प्रकाशित करती हैं, उसी प्रकार इस ब्रह्मांड

की अनंत शक्तियाँ आद्याशक्ति काली से निसृत हुई हैं और वही समस्त शक्तियों का आश्रय है। माया, दिक् और काल सभी उसी महाकाली की शक्तियाँ हैं।

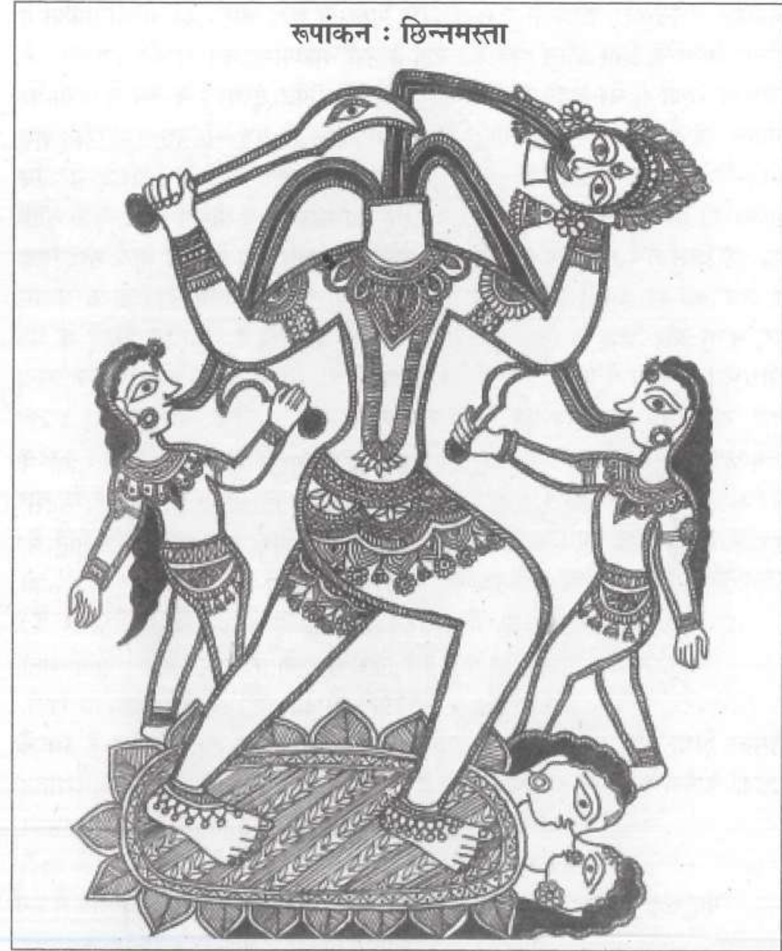
महाशक्ति काली के समक्ष काल भी तुच्छ और निष्क्रिय है। इसी तथ्य को उजागर करने के लिए मूर्तिकला और चित्रकलाओं में महाकाल को काली के चरणों के नीचे शव की तरह निश्चेष्ट, निपतित दिखलाया जाता है। चेतनारहित अथवा शक्तिशून्य जीव और जड़ पदार्थ में कोई भेद नहीं रह जाता है। प्रलयकाल में महामाया जब विश्व की समस्त शक्तियों को अपने भीतर संगृहित करके अव्यक्त तत्व में लीन हो जाती है तब शिव भी शव हो जाता है। काली की मूर्ति इस संहारतत्व का ही प्रतीक है।

पाठ-9
छिन्नमस्ता

इस संसार के निर्माण और ध्वंश की प्रक्रिया को समझने के लिए तांत्रिक ग्रंथों में 'दशमहाविद्या' का उल्लेख किया गया है जिसके अंतर्गत काली, तारा, त्रिपुरसुंदरी, भुवनेश्वरी, त्रिपुर भैरवी, छिन्नमस्ता, धूमावती, बगलामुखी, मातंगी और कमलात्मिका शक्तियों का अध्ययन किया जाता है। मिथिला चित्रकला और सांस्कारिक कर्मकांडों में अद्यतन प्रचलित अधिकांश चित्र इन तांत्रिक शक्तियों पर आधारित हैं। 'छिन्नमस्ता' दशमहाविद्या की छठी शक्ति है जिसे षष्ठीमाता के नाम से भी जाना जाता है। चित्र और मूर्ति में छिन्नमस्ता को रति और कामदेव की मिथुनरत जोड़ी पर खड़ी, निर्वस्त्र, शीर्षविहीन और दो ऊर्ध्वबाहु वाली दिखलाया जाता है। उसके एक हाथ में अपना ही कटा हुआ सिर होता है और दूसरे हाथ में खड्ग या कैंची होती है। सिररहित गर्दन से रक्त की तीन धाराएँ निकलती रहती हैं जिनमें से बीच की धारा का पान उसका अपना ही कटा हुआ सिर करता है और दो धाराओं का पान देवी के बाँए-दाहिने खड़ी उसकी योगनियाँ, वर्णिनी और डाकिनी करती हैं।

छिन्नमस्ता तांत्रिक प्रतीकों के द्वारा सृष्टिक्रिया की अभिव्यक्ति है। तांत्रिक ग्रंथों में इसके गूढ रहस्यों की व्याख्या की गयी है। इन ग्रंथों में इसे 'विद्युत रेखा', आद्य प्रकाश की रेखा कहा गया है। प्रलयकाल की गहन कालिमामय अंधकार के बीच जब पहली बार प्रकाश की रेखा छिटकी, प्रकाश और ध्वनि की अंतर्प्रतिक्रिया से परमेश्वर को सृष्टि की प्रेरणा हुई। तांत्रिक साधक उसी प्रतिक्रिया को छिन्नमस्ता के नाम से जानते हैं। प्रकाश और ध्वनि की अंतर्प्रतिक्रिया इतनी भयानक और प्रचंड होती है कि 'सृजन' का संबंध 'सर्जक' से एक झटके में विच्छिन्न हो जाता है। इसी कारण छिन्नमस्ता 'सिरकटे' रूप में चित्रित की जाती है। प्रकृति में हम बादलों के बीच प्रचंड बिजली को कड़कड़ाते और छिटकते देखते हैं। तांत्रिकों के मत में, प्रकाश

रूपांकन : छिन्नमस्ता



और ध्वनि का यह मिलन ही छिन्नमस्ता है।

मिथिला लोकचित्र में रहस्यमूर्ति छिन्नमस्ता जीवन के स्वतंत्र अस्तित्व की अभिव्यक्ति के रूप में देखी जाती है। इसका कथासूत्र यह है कि परमेश्वर जितना प्रसन्न सृष्टि करने के बाद होता है, उससे भी अधिक आनंद उसे तब मिलता है जब सृष्ट पदार्थ का संबंध उससे कट जाए। सृष्टिकर्ता से इस विच्छेदन के बिना सृष्टि का विकास संभव नहीं है। इस रहस्य को इस प्रकार समझा जा सकता है कि मनुष्य या किसी प्राणी के अपनी माँ के गर्भ में अंकुरण से भी पूर्व, नर और मादा के बीच भावों का संकर्षण होता है। यह कुछ वैसा ही है जैसे प्रकाश और ध्वनि के संकर्षण से

आकाश में बिजली छिटकती है। नर और मादा के बीच भावों की अंतर्प्रतिक्रिया से दोनों संभोग के लिए प्रेरित होते हैं। यही अंतर्प्रतिक्रिया छिन्नमस्ता की उपस्थिति है, जिसकी प्रेरणा से नर-मादा का मिलन होता है और फिर सूक्ष्मदेह के रूप में प्राणी का अपनी माँ के गर्भ में अवतरण होता है। माता के गर्भ में पल-बढ रहा शिशु काल-विशेष में एक झटके के साथ योनिमार्ग से बाहर आता है। झटके की यह शक्ति भी छिन्नमस्ता ही है। अपने रक्त-मांश और प्राणों से पोषण करने वाली माता का वह शिशु गर्भ से बाहर आने के बाद भी तब तक उसकी देह का भाग बना रहता है, जब तक वह अपनी माँ के साथ नाभिनाल के द्वारा जुड़ा रहता है। तर्क के आधार पर, माता और शिशु के बीच का नाभिनाल वैसा ही होता है जैसा कि किसी के धड़ और सिर के बीच में गर्दन। माता और शिशु के बीच के नाभिनाल को जब तक काटा नहीं जाता तब तक नवजात शिशु स्वतंत्र अस्तित्व में नहीं आ सकता। इसका प्रतीकात्मक अर्थ यह हुआ कि अपने शिशु के जीवन के लिए माँ अपनी गर्दन काटती है ताकि जीवरूप में शिशु स्वतंत्र अस्तित्व में आ सके। नाभिनाल कटने के बाद स्वतंत्र अस्तित्व में आए प्राणी को माँ अपना दूध पिला कर उसे जीवन देती है। रहस्यमूर्ति छिन्नमस्ता का यही प्रतीकार्थ है।

पाठ-10
सरस्वती

समस्त विद्या और बुद्धि की देवी **सरस्वती** की अभ्यर्थना में एक श्लोक है जिससे उसकी महिमा का ज्ञान होता है

"ऐम्बितमे नदीतमे देवीतमे सरस्वती।
अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि ॥"

"मातृगणों में श्रेष्ठ, नदियों में श्रेष्ठ, देवियों में श्रेष्ठ महासरस्वती! अभाव में हम संकुचित अर्थात हीन हो गए हैं। अतएव हमें हे माता, प्रशस्ति प्रदान करो!" इस श्लोक में सरस्वती को अंबितमा, नदीतमा तथा देवीतमा कहा गया है। अंबा शब्द का अर्थ होता है माता और अंबितमा का अर्थ होता है सभी मातृका शक्तियों में श्रेष्ठ। जो अपने शिशुओं की रक्षा करती है और पोषण करती है वही माता कहलाती है। मनुष्य के जीवन में ज्ञान से बड़ा कोई रक्षक नहीं है। ज्ञान जीवन है और अज्ञान ही नाश है। अर्थात ज्ञानरूपी बल प्रदान करने वाली माता सरस्वती है।

पौराणिक कथाओं के अनुसार माता सरस्वती नदीरूप में प्रकट हुई और प्रयाग में गंगा-यमुना के साथ मिल कर त्रिवेणी-संगम बनाती है। नदीरूपा सरस्वती का आध्यात्मिक भाव सुषुम्ना नाड़ी है जो इड़ा और पिंगला के मध्य भाग में अवस्थान करती



है तथा मूलाधार चक्र में दोनों के साथ संयुक्त होती है। यह आध्यात्मिक त्रिवेणी है।

उपर्युक्त श्लोक में सरस्वती की तीसरी उपाधि 'देवितमे' है। देवी शब्द संस्कृत के दिव् धातु से बना है। दिव् अर्थात ज्योति, प्रकाश। अंधकार का नाश करके ज्ञान का आलोक प्रदान करने वाली शक्तियों में सर्वश्रेष्ठ सरस्वती देवीतमा हैं।

पौराणिक परंपरा में सरस्वती को सृष्टिकर्ता ब्रह्मा की शक्ति कहा गया है। वह ब्रह्मा की पुत्री भी हैं और स्त्री भी। महाभारत में दक्ष-कन्या के रूप में सरस्वती का उल्लेख हुआ है। एक लोककथा के अनुसार, प्रारंभ में लक्ष्मी के साथ सरस्वती भी विष्णु की पत्नी थी। लेकिन सौतिया डाह के कारण दोनों बराबर लड़ती रहती थी। दोनों के कलह से विष्णुलोक अशांत हो गया। अंत में एक दिन खीज कर विष्णु ने ब्रह्मा को सरस्वती दान

कर दिया। तब से ज्ञान की देवी सरस्वती ब्रह्मा की पत्नी बन गयी। वसंत पंचमी के दिन सरस्वती की विशेष पूजा-अर्चना होती है। गाँवों में इसी दिन से लोग होली के गीत गाना प्रारंभ करते हैं। वसंत पंचमी को श्रीपंचमी भी कहा जाता है।

पाठ-11
लक्ष्मी

लक्ष्मी को धन की देवी कहा गया है। इनका संबंध धन, सौंदर्य और संपदा से है। यह दो बहन हैं। दूसरी का नाम अलक्ष्मी है। लक्ष्मी अभिमानी है और अलक्ष्मी


रूपांकन : लक्ष्मी

जिद्दी। लक्ष्मी जिस पर प्रसन्न होती है, उसे धन-धान्य से बोर देती है और अलक्ष्मी जिसे पकड़ लेती है, उसे तबाह कर देती है। मुद्रा, अन्न और सुंदरता लक्ष्मी की शक्ति है और क्रोध, आलस्य, दुर्व्यसन अलक्ष्मी के अस्त्र हैं। संसार का हर आदमी इन दोनों बहन में से किसी न किसी के हिस्से में जरूर आता है।

भारत के कुछ भागों में लक्ष्मी और अलक्ष्मी दोनों पूजी जाती है। मिथिला संस्कृति में अलक्ष्मी से परहेज है। अपने घरों में दरिद्रता की देवी अलक्ष्मी के प्रवेश को रोकने के लिए मिथिला की गुणवती चित्रकार स्त्रियाँ चावल के श्वेत रंग (पिठार) से भूमि पर विस्तृत 'लक्ष्मी अरिपन' बना कर उसमें कहीं-कहीं सिंदूर के बिंदु लगाती है। सौभाग्य और विजय के प्रतीक सिंदूर को अलक्ष्मी सहन नहीं कर सकती है। इसलिए वह वहाँ नहीं जाती है, जहाँ सिंदूर उपस्थित हो।

यजुर्वेद में 'श्री' तथा 'लक्ष्मी' विष्णु की दो पत्नियाँ मानी गयी हैं। अथर्ववेद में श्री धन-संपत्ति और सौभाग्य की द्योतक है। श्रीसुक्त में श्री तथा लक्ष्मी एक ही देवी को कहा गया है जो स्वर्ण और रजत की माला पहनती है, हिरण्य अथवा पद्म वर्ण वाली है, पद्म पर स्थित है और हाथ में बेल का फल धारण करती है। महाभारत में लक्ष्मी की समुद्र-मंथन से उत्पत्ति और मगर पर आसीन कुबेर की स्त्री के रूप में उल्लेख है। अग्निपुराण में लक्ष्मी को प्रकृति तथा नारायण को पुरुष कहा गया है जिनके संयोग से इस संसार की सृष्टि होती है। विष्णुपुराण में 'श्री' विष्णु की पत्नी तथा समुद्र-मंथन से उत्पन्न कमलालया कही गयी है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में 'लक्ष्मी' की मूर्ति का विधान करते हुए कहा गया है कि जब विष्णु के साथ लक्ष्मी की मूर्ति बनायी जाए तो लक्ष्मी को दो भुजाओं वाली बनाना चाहिए, किंतु यदि पृथक दिखलाना हो तो इन्हें चतुर्भुजी बनाना चाहिए। चतुर्भुजी लक्ष्मी को अष्टदल कमल के आसन पर प्रदर्शित करना चाहिए। उनके नीचे के दाहिने हाथ में अमृतघट, ऊपर के एक हाथ में श्रीफल (बेल) और दूसरे हाथ में शंख तथा दो हाथियों द्वारा सूड़ों से घट लिए हुए स्नान कराते दिखलाना चाहिए।

पाठ-12
नयना योगिनी

'नयना योगिनी' मिथिला चित्रकला और मैथिल समाज की सुपरिचित तांत्रिक-मांत्रिक शक्ति है जिसकी उपस्थिति कोबर-घर के चारों कोण में होती है और वह वर-बधू को सभी प्रकार के अनिष्टों या अभिचारों से रक्षा करती है। सामान्य स्त्री के परिधान में वेष्ठित नयना योगिनी के एक हाथ में घरेलू पंखा होता है, माथे पर बाँस की डलिया होती है और दूसरे हाथ से अपना घूँघट पकड़े रहती है। नयना

रूपांकन : नयना योगिनी-1



योगिनी के संबंध में विस्तृत अध्ययन 'कोबर' शीर्षक लेख में दिया गया है।

कहा जाता है कि 'नयना योगिनी' का प्रादुर्भाव मेसोपोटामिया की सभ्यता से हुआ है। बलूचिस्तान (पाकिस्तान)का 'हिंगलाज माता' का मंदिर, जहाँ देवी ने कहीं दूर से आकर अपना विश्राम-स्थल बनाया, भारत के चारों मुख्य दिशाओं में स्थापित चार मूल शक्ति-पीठों में एक था। विशिष्ट पुराकालिक महत्व का यह स्थल संभवतः सिंधु घाटी-सभ्यता का सहवर्ती था। संभव है कि हिंगलाज की तरह ही तात्विक स्त्री-शक्ति कामरूप, आसाम में प्रकट हुई जो प्रारंभिक शक्तिपीठों में एक है। आसाम के इस शक्तिपीठ में देवी के पवित्र जननांग, महायोनि, देवी के रूप में पूजित है। कामरूप का मंदिर डायन, तांत्रिक और सभी तरह के कामजन्य धार्मिक कृत्यों के लिए प्रसिद्ध है।

रूपांकन : नयना योगिनी-2



कामरूप में देवी कामाख्या 'नोना' या 'नयना योगिनी' के नाम से भी जानी जाती है। इसी नोना योगिनी या नयना योगिनी की उत्तर प्रदेश और बिहार (मिथिला) में लोना या नोना चमारिन या योगिनी के नाम से मंत्रों में भणिता की गयी है।

पाठ-13
सीता-कथा

सीता का एक नाम मैथिली भी है। वह मिथिला के राजा सीरध्वज की पुत्री थीं जिनका विवाह विष्णु के सातवें अवतार श्रीराम से हुआ था। विदेह और जनक सीरध्वज की उपाधियाँ हैं, जिस कारण सीता को वैदेही और जानकी भी कहा जाता है। आद्याशक्ति के रूप में पूजित सीता को मिथिला के लोग अपनी बहन मानते

हैं। मिथिला चित्रकला में रामायण के प्रसंगों का महत्वपूर्ण स्थान है, किंतु पृथक रूप से सीता के जीवन से संबंधित कई प्रसंग इस चित्रकला के विशिष्ट अंग हैं।

सीता का अर्थ होता है, "हल के फाल से खींची हुई रेखा।" कहते हैं, प्राचीन मिथिला देश में एक बार घोर अकाल पड़ा। वर्षा का कोई अता-पता नहीं था। नदी-पोखर सूख कर मैदान बन गए। चारों ओर जल के लिए हाहाकार मच गया था। राजा ने किसानों को बुलाया। पंडितों की सभा की। ग्रह-नक्षत्रों की चाल जानने वालों ने बताया, राजा यदि हल चलावें तो वर्षा अवश्य होगी।

सीता जी का जन्म



पंडित-ज्योतिषियों की राय मान कर जुताई की तैयारी हुई, पुष्टकाय बैल हल में जुत गए और ब्रह्मविद्या में पारंगत राजा जनक हल चलाने लगे। बिन पानी की सूखी मिट्टी, खेत में पड़ी दराड़ें जीर्ण गुदड़ी की तरह विदीर्ण थीं। चलते-चलते हल का फाल किसी दरार में फँस गया। लोग दौड़े। झाँक कर देखा। फाल किसी कड़ी चीज में लग कर अँटक गया था। मिट्टी खोदने पर जो निकला, वह देख कर लोग अचंभित थे। एक बड़ा सा पात्र और उसमें शांत, मुसकुराती एक कन्या। राजा ने उसे प्रकृति का वरदान समझा और फूल सी नन्ही उस बच्ची को अपनी छाती से लगा लिया। जनकजी के कोई संतान नहीं थी। उन्होंने सिर नवा कर धरती को

प्रणाम किया और कन्या को अपनी बेटी मान कर घर ले आए। हल के फाल से उपजी उस कन्या को सभी लोग सीता कहने लगे।

सीता के जन्म की कई कथाएँ चर्चित हैं। 'अद्‌भुत रामायण' में वर्णन है कि कठिन तपस्या करके रावण ने ब्रह्मा को प्रसन्न कर लिया और कई तरह के वरदान पा कर क्रूर और अत्याचारी हो गया। वह दंडक वन के ऋषियों के शरीर में वाण चुभो-चुभो कर कलशे में उनका रक्त जमा करने लगा। एक दिन रावण वह कलश अपनी स्त्री मंदोदरी को रखने के लिए दिया और हिदायत दे दी कि उस कलश का रुधिर कोई पी नहीं ले। मंदोदरी रावण के कुकृत्यों से बहुत दुःखी रहा करती थी। एक दिन उसने कलशे का तीक्ष्ण रुधिर पी कर प्राणांत करने की ठान ली। उसने ऋषियों के शरीर से निकाल कर जमा किया रक्त पी लिया। दैवी चमत्कार ऐसा हुआ कि वह गर्भवती हो गयी। कुछ समय बाद उसने अपना गर्भ निकलबा कर एक बड़े पात्र में रखा, पुष्पक विमान पर चढ़कर मिथिला आयी और गर्भपात्र को एक खेत में गड़वा दिया। समय आने पर वही शिशु जनक को हल जोतते समय प्राप्त हुआ जो सीता कहलायी। सीरध्वज जनक और माता सुनयना के वात्सल्य की छाँव में पलती हुई सीता यथा समय सयानी हुई और मिथिला की महान संस्कृति की आधार-पीठिका बनी।

सीता द्वारा अति विशाल शिव-धनुष को सहज भाव से उठाना



सीरध्वज के पूर्वज को शिवजी की कृपा से, धरोहर के रूप में एक विशाल शिव-धनुष मिला था, जो उनके पूजा-गृह में रखा रहता था। वह धनुष इतना विशाल था कि अनेक लोग एक साथ मिल कर भी उसे सहजता से उठा नहीं सकते थे। इसलिए उस स्थान की लिपाई-सफाई भी नहीं हो पाती थी। एक दिन जनक जी ने देखा, सीता जी बाँए हाथ से धनुष उठाए, दाहिने हाथ से भूमि लीप रही थी। यह देख कर जनक जी इतने आश्चर्यचकित और हर्षित हुए कि उसी क्षण उन्होंने प्रतिज्ञा कर ली कि जो कोई वीर धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा देगा, उसीके साथ सीता का व्याह होगा।

महामुनि विश्वामित्र और दूसरे वनवासी तपस्वियों को मारीच और सुबाहु जैसे राक्षस बहुत तंग करते थे। ये राक्षस उपद्रव करके मुनियों के यज्ञानुष्ठान में बाधा करते रहते थे। अंततः बहुत तंग होने पर विश्वामित्र ने अयोध्या के राजा दशरथ के दरबार में उपस्थित हो कर उन्हें राक्षसों के अत्याचार का वृत्तांत कह सुनाया और राक्षसों के नाश के लिए राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मण को साथ ले कर वन में लौटे। मुनि विश्वामित्र के साथ अभियान पर निकले राम-लक्ष्मण का सामना सर्वप्रथम राक्षसी ताड़का के साथ हुआ जिसे एक ही वाण में राम ने धराशायी कर दिया। ताड़का राक्षसी के वध का समाचार सुन कर मारीच अपने सहयोगी राक्षसों के साथ आ डटा। राम ने उन्हें भी मार कर समुद्र पार भगा दिया। फिर राम ने सुबाहु को मारा। लक्ष्मण ने मारीच के साथ आए राक्षस-सेना का संहार कर डाला। इस प्रकार श्रीराम-लक्ष्मण ने राक्षसों को मार कर तपस्वियों को निर्भय कर दिया। इसके बाद दोनों भाई गुरु के साथ मिथिला के लिए प्रस्थान किया, जहाँ जनक-नंदिनी सीता के स्वयंवर का आयोजन होने जा रहा था।

मिथिला आगमन पर विश्वामित्र सहित राम-लक्ष्मण का भावभीनी स्वागत हुआ। राजा जनक ने उन्हें उत्तम निवास में ठहराया। अगले दिन प्रातःकाल श्रीराम और लक्ष्मण गुरु के लिए पूजा के फूल लाने हेतु जनक जी की फुलवारी में पधारे। संयोगवश सीता भी उसी समय फुलवारी स्थित पार्वती मंदिर में पूजा कर रही थीं। उनकी एक सखी ने फुलवारी में फूल-पत्तों का संग्रह करते राम-लक्ष्मण को देखा और नारी-सुलभ कौतूहलवश सीता जी को मंदिर में बुला लिया।

फुलवारी में श्रीराम की विश्वमोहिनी श्याम छवि को देख कर सीताजी अपलक उन्हें निहारती रही। सखियाँ मंत्रमुग्ध-सी बेसुध हो गयीं। श्रीराम की भी यही स्थिति थी। सीताजी के मुखरूपी चंद्रमा को निहारने के लिए उनके नेत्र चकोर बन गए।

स्वयंवर का विशाल मंडप सज-धज कर तैयार था। दूर-दूर से आए वीर राजा-महाराजाओं के आसन लगे थे। उस अवसर पर भलीभाँति शृंगार करके जब

पुष्पवाटिका में सीता-राम का प्रथम मिलन



सीताजी ने रंगभूमि में पैर रखा तब उनका दिव्य रूप देख कर सभी स्त्री-पुरुष मोहित हो गए। सीता के हाथ में जयमाल सुशोभित था। उस समय राजा जनक की घोषणा के साथ स्वयंवर का कार्यक्रम प्रारंभ हुआ। उद्घोषक भाटों ने जनक की प्रतिज्ञा को उपस्थित राजाओं के समक्ष दुहराया "शिवजी के विशाल धनुष को आज इस राजसभा में जो भी तोड़ेगा, सीताजी बिना किसी विचार के उसी को वरण करेंगी।" उद्घोषणा सुन कर राजाओं के मन ललचा गए, किंतु विधाता की इच्छा, बड़े-बड़े वीर थक-हार कर बैठ गए, किसी से धनुष हिला तक नहीं; उसे तोड़ना तो दूर की बात थी। सभी राजा उपहास के योग्य हो गए। यह स्थिति देख कर जनक जी निराश हो बोले

"अब जनि कोउ माखै भट मानी। वीर बिहीन मही मैं जानी ॥
तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न बिधि वैदेहि बिबाहू ॥"

(रामचरितमानस)

(अब कोई वीरता का अभिमानी नाराज न हो। मैंने जान लिया, पृथ्वी वीरों से खाली हो गयी। अब आशा छोड़ कर अपने-अपने घर जाओ, ब्रह्मा ने सीता का विवाह लिखा ही नहीं)। जनकजी के वचन सुन कर सभी स्त्री-पुरुष जानकीजी की

ओर देख-देख कर दुःखी हो रहे थे, किंतु लक्ष्मणजी तमतमा उठे। उनकी भौंहें टेढ़ी हो गयीं, ओठ फड़कने लगे और नेत्र क्रोध से लाल हो गए। लक्ष्मण के मन का भाव समझ कर गुरु विश्वामित्र ने राम को धनुष भंग करने का आदेश दिया।

गुरु का आदेश सुन कर श्रीराम ने उनके चरणों में सिर नवा कर मन ही मन पितर और देवताओं की वंदना करके सीताजी की ओर ताका और बड़ी फुर्त्ती से धनुष को उठाया, प्रत्यंचा चढ़ाई और उसे इस प्रकार झटके से खींचा कि धनुष

सीता-राम स्वयंवर



भयंकर ध्वनि के साथ तीन टुकड़ों में खंडित हो गया।

शिव-धनुष के टूटते ही चारों ओर आनंद मुखरित हो उठा। जय-जयकार की तुमुल ध्वनि के साथ झाँझ, मृदंग, शंख, शहनाई, भेरी, ढोल और सुहावने नगाड़े बजने लगे। जहाँ-तहाँ झुंड के झुंड युवतियाँ मंगलगीत गाने लगीं। सखियाँ सीता को संग ले श्रीराम को जयमाला पहनाने आगे बढ़ीं, सीताजी ने श्रीराम के गले में जयमाला पहना दी।

इस अद्‌भुत संयोग का समाचार जब अयोध्या पहुँचा तो राजा दशरथ बारात सजा कर मिथिला आये जहाँ सीता के साथ राम का; जनकजी की दूसरी बेटी उर्मिला से लक्ष्मण का; जनकजी के भाई कुशध्वज की एक पुत्री मांडवी से भरत और दूसरी पुत्री श्रुतकीर्त्ति से शत्रुघ्न का विवाह धूमधाम से संपन्न हुआ।

विवाह के बाद सीता जीवन भर तपती ही रही कभी लांछन की आँच में तो कभी सत्ता की आग में। अंत में अपनी कीर्त्ति को छोड़ कर धरती की बेटी धरती में ही समा गयी।

पाठ-14
राधा-कृष्ण

मिथिला-चित्रकला में यद्यपि कृष्ण-लीला के रूप में उनके बचपन से लेकर युवावस्था तक के अनेक प्रसंग चित्रित होते हैं, किंतु राधा-कृष्ण के प्रेम से जुड़े प्रसंग सर्वाधिक

राधा-कृष्ण का प्रेम (1)



राधा-कृष्ण का प्रेम (2)



लोकप्रिय हैं। इन प्रसंगों के स्रोत के रूप में शिल्पी मुख्यतया जयदेव के 'गीतगोविंद', सुखसागर, विद्यापति के पद और अन्य साहित्यिक ग्रंथों को लेते हैं। **राधा-कृष्ण का प्रेम-1** गीतगोविंद के बारहवें सर्ग से संबंधित है जब राधा-कृष्ण के मिलनोपरांत राधा ने कृष्ण से कहा कि उसके उलझे बालों को सहेज दें

"भ्रमरचयं रचयन्तमुपरि रुचिरं सुचिरं मम सम्मुखे। जितकमले विमले परिकर्मय नर्मजनकमलकं मुखे ॥ निजगाद सा यदुनन्दने क्रीडति हृदयानन्दने!"

इस लेखकद्वय ने गीतगोविंद का मैथिली भाषा में सचित्र भावानुवाद किया है (**मैथिली गीतगोविंद**)। इस श्लोक का मैथिली रूप इस प्रकार है

"कमलहुँ सँ बढ़ि उज्ज्वल मोदक, मुख पर केस समारू।
लगै जेना भौंरा लुबधल हो, तहिना लट झमकारू ॥
मुख मे वास करै जौं मधुवन, खेलू, हरखि-पुलकि यदुनंदन!"

राधा-कृष्ण का प्रेम-2 मिथिला के महान कवि विद्यापति के पद पर आधारित है, जब झाड़ियों से निकल कर कृष्ण ने यमुना से जल भर कर आती राधा का आँचल पकड़ लिया। मनुहार करते हुए राधा कहती है, "हम-तुम एक ही नगर में रहते हैं लेकिन लगता है जैसे तुम मेरे साथ बटमारी कर रहे हो। मेरा आँचल छोड़ दो, नयी साड़ी है, फट जाएगी। लोग देखेंगे तो भारी अपयश होगा। इस तरह बदनाम मत करो।" पद की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं

"कुंज भवन सौं निकसलि रे, रोकल गिरधारी। एकहि नगर बसु माधव रे, जनि करू बटमारी ॥ छोड़ू कन्हैया मोरा आँचर रे, फाटत नव साड़ी। अपजस होएत जगत भरि रे, जनि करिअ उघारी ॥"

पाठ-15

नाग-कन्या

मिथिला चित्रकला की नाग-कन्या दंतकथा और पौराणिक कथाओं से आयी है। नाग-कन्या को यद्यपि मिथिला चित्र में मानवीकृत नाग की तरह चित्रित किया जाता है किंतु इसका पूर्ण मानवी रूप भी है। रहस्यमय घटनाओं से भरी दंतकथाओं में इच्छारूपधारी, सम्मोहिनी, अत्यंत रूपवती स्त्री के रूप में इसका उल्लेख किया गया है। पौराणिक कथाओं में भी नाग-कन्या का उल्लेख मिलता है। नाग-कन्या उलूपी से महाभारत के अर्जुन का विवाह हुआ था। कृष्ण के रनिवास में भी नाग-कन्याएँ थीं। इससे स्पष्ट होता है कि ये वस्तुतः सर्प-योनि की नहीं थीं। संभव है कि नाग-कन्याएँ किसी नाग-जाति से संबंधित थीं।


नाग-कन्या

पाठ-16

मिथिला चित्र में मानवाकृति

मिथिला चित्रकला में व्यावसायिक अभ्युदय सन् 1970 ईस्वी के बाद प्रारंभ हुआ जब यह कला मिथिला के घर-आँगन से निकल कर वैश्विक पटल पर आयी। मूल रूप से यह चित्रकला तांत्रिक अरिपनों और पौराणिक प्रसंगों पर आधारित रही है। सांस्कारिक शुभ अवसरों पर भित्ति चित्रण के रूप में पौराणिक प्रसंगों का चित्रण तो होता ही है, अनेक विधियों के संपादन से संबंधित मानवीय चित्र भी लिखे

जाते हैं। यहाँ उल्लेखनीय है कि जब यह चित्रकला बाजार में आयी तो इसके सबसे बड़े प्रशंसक पश्चिमी दुनिया के लोग थे। उनके लिए पौराणिक प्रसंगों पर आधारित चित्रण एक कौतूहल का और धार्मिक दृष्टि से नवीन अध्ययन का विषय लगा। इन प्रसंगों में उनकी अभिरुचि ने बाजार को गति प्रदान की। पश्चिमी ग्राहकों की देखा-देखी महानगरों में रहने वाले भारतीय ग्राहकों की रुचि भी इन चित्रों में बढ़ी। जब कोई कला बाजार की वस्तु बन जाती है तो शिल्पी ग्राहकों की अभिरुचि के अनुरूप ही रचना करने लग जाते हैं। मिथिला के शिल्पी भी ग्राहकों की रुचि के अनुसार पौराणिक चित्रों की रचना से ही संतुष्ट रह गए और अन्य सामाजिक या मानवीय त्रासदी उनकी रचना के विषय नहीं बन पाए। यद्यपि सन् 1980 के बाद इस कला में औपचारिक शिक्षण-विधि विकसित होने के बाद सामाजिक संदर्भ भी चित्रों के विषय बने हैं किंतु किसी कला-परंपरा में नए विषय स्थापित होने में काफी समय लग जाता है। आज भी मिथिला चित्र में मानवाकृति के रूप में वर-बधू से संबंधित चित्रों की बहुलता है।

'मिथिला लोकचित्र' एक पारंपरिक चित्र-शैली है जो सन् 1970 से पूर्व बाहरी दुनिया के लोगों के लिए प्रायः अनजान थी। 1970 में भारत सरकार ने


मानवाकृति : मिथिला की शिल्पी



मैं मिथिला की बेटी,मैं कन्या धरती की,
मैं सीता की बहन, कुसुम-कलिका परती की!

जब इस कला को भारतीय लोकचित्र के अंतर्गत मान्यता प्रदान की तब बहुत कम समय में ही यह कला विश्व-विख्यात हो गयी किंतु इन चित्रों का पारंपरिक प्रयोग मात्र दो उच्च जाति की स्त्रियों के बीच सीमित था, इसलिए मिथिला की अन्य जाति की स्त्रियाँ भी इस कला से अपरिचित ही थीं। भारत की अन्य लोककलाओं

की तरह इस कला का प्रशिक्षण भी पारिवारिक परंपरा पर ही आधारित था। इसकी कोई लिखित शिक्षण-सामग्री नहीं थी।

इस लेखक (कश्यप) और श्रीमती शिवा कश्यप ने सन् 1980 में लोककलाओं को पारंपरिक ज्ञान-पद्धति मान कर इसमें औपचारिक शिक्षण-विधि का विकास किया और सभी जाति-धर्म की स्त्रियों के लिए निःशुल्क कला-पाठशाला स्थापित की। इस विद्यालय में निश्चित किया गया कि कला का प्रशिक्षण लेने के साथ ही छात्रा सीखे गए पाठों के आधार पर चित्रित वस्त्र-सामग्री भी बनायेंगी जिसे महानगरों में बेच दिया जाएगा। ऐसा सोचना उस समय बहुत कठिन था, खास कर जब कि मिथिला में स्त्रियों को घर से बाहर जा कर पढ़ने-लिखने की स्वतंत्रता नहीं थी, किंतु लाख कठिनाइयों के बाद आखिर यह प्रयास एक आंदोलन के रूप में बिहार के अन्य भागों में फैला। समय की माँग थी कि स्त्रियाँ पढ़ें और कामकाजी बनें। बहुत जल्द ही यह आंदोलन सफल हुआ। आज बिहार के अनेक भागों में **'चित्रकला से शिक्षा और रोजगार'** की इस पद्धति के साथ अनगिनत स्त्रियाँ लगी हुई हैं और अपनी आजीविका के उपार्जन के साथ ही एक तरह से आत्मस्वातंत्र्य का अनुभव कर रही हैं। यह उल्लेखनीय है कि मिथिला लोकचित्र में विकास के तर्ज पर भारत की अन्य चित्रकलाओं में भी विकास की अवधारणा तेज हो रही है। भारत से बाहर, यूरोप-अमेरिका के लोगों में भी यह चित्रकला काफी लोकप्रिय है। यह लेखकद्वय यूरोप के देशों में अनेक कार्यशालाओं के आयोजन के बाद विश्वास करता है कि अब हमारे समाज की वंचित स्त्रियाँ अपनी रचनात्मक कलाओं से अपना भविष्य सँवार सकती हैं।

पाठ-17

गौर-पूजन

मिथिला की स्त्रियाँ अपने सुखी और दीर्घ दांपत्य जीवन के लिए नित्य गौरी की पूजा करती हैं जिसे 'गौर-पूजन' कहा जाता है। गौर-पूजन का यह क्रम विवाह के अगले प्रातः से शुरू होता है और तब तक चलता रहता है जब तक कि कोई स्त्री सधवा रहे। विवाह के बाद यह पूजन कोबरघर में उस स्थान पर किया जाता है जहाँ दीवाल पर 'कोबर' चित्र लिखा रहता है। इस पूजा के लिए कच्ची मिट्टी से एक हाथी तैयार किया जाता है जिसके माथे पर एक सपरी में रखे सुपारी पर चुटकी से सिंदूर गिराते हुए नववधू मन ही मन एक मंत्र का उच्चारण करती है। इस कर्मकांड में सुपारी को शिवलिंग और सिंदूर को गौरी का प्रतीक माना गया है।



वर-वधू द्वारा गौर-पूजन

पाठ-18

दानवाकृति

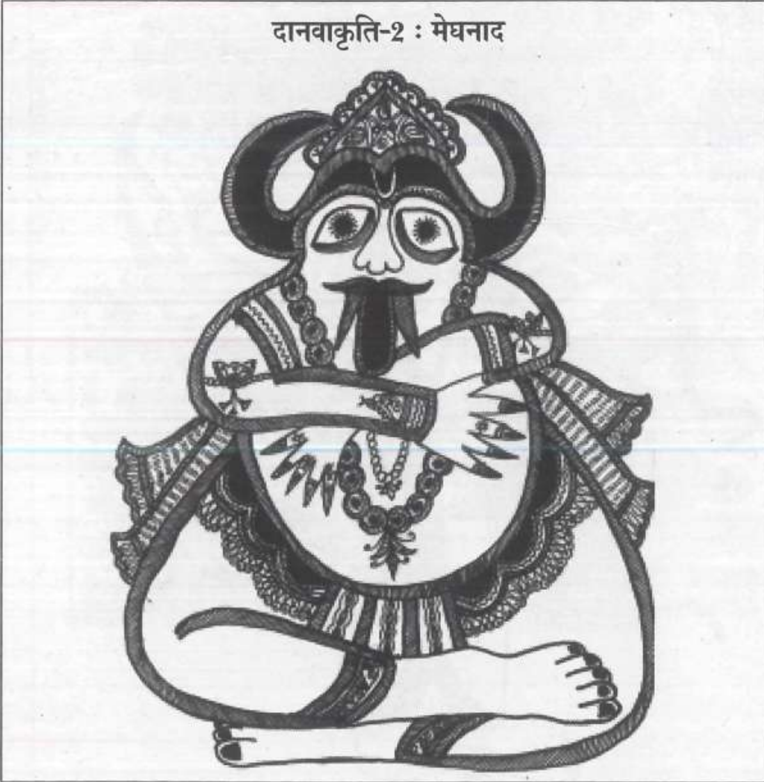
पौराणिक परंपरानुसार कश्यप और दिति की संतानें दैत्य, दानव, राक्षस या असुर कहलाए जबकि कश्यप और अदिति की संतानें देवता या सुर कहलाए। पौराणिक साहित्य और दंत कथाओं में 'राक्षस' शब्द मनुष्य और देवताओं के शत्रु के रूप में प्रयुक्त हुआ है। रामायण-काल तक आते-आते आर्यों के दास या दस्यु शब्द अशुभ-सूचक दैत्य के रूप में प्रयोग होने लगे। वस्तुतः यह अनार्यों के प्रति आर्यों के मन की घृणा ही थी जो इस रूप में फूटी और उन्होंने 'राक्षस' के रूप में कल्पित पात्रों से धर्म-शास्त्रों की रचना की।

दानवाकृति-1 : रावण



राक्षसों को काला-कलूटा, बेतरतीव बड़े-बड़े दाँतों वाला, भयंकर शरीर वाले नरभक्षी के रूप में दिखलाया गया है। मिथिलाचित्र में राक्षस प्रतीकों का प्रयोग पारंपरिक रूप में रामायण-कथा के प्रसंगों में और कृष्ण-लीलाओं में कंस तथा उसकी मारक शक्तियों को राक्षस रूप में दिखलाया जाता है। आधुनिक मिथिलाचित्र में राक्षस प्रतीक का प्रयोग पर्यावरण को क्षति पहुँचाने वाले तत्वों के रूप में होने लगा है। पौराणिक उल्लेखों के अनुसार, राक्षसों के भी सुंदर कन्याएँ होती थीं जिनका मनुष्यों से विवाह होता था। रावण की पत्नी मंदोदरी इतनी सुंदर थी कि उसे देख कर हनुमान को भ्रम हो गया कि कहीं यही तो सीता नहीं है। सीताजी के स्वयंवर में रावण भी आया था। जनकजी के प्रण के अनुसार यदि वही धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा देता तो उसीके साथ जानकी का विवाह होता। दैत्यराज वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा के साथ आर्य राजा ययाति का विवाह हुआ था। राक्षस भी मनुष्यों की ही एक जाति थी जो लंका, दंडकारण्य, जनस्थान और रसातल (संभवतः वर्त्तमान मैक्सिको) में रहती थी।

दानवाकृति-2 : मेघनाद



एक स्थान पर रावण ने कुंभकर्ण, खर आदि का परिचय इस रूप में दिया है

''सर्वे वेदविदः शूराः सर्वे सुचरितव्रताः। ऊषुः पित्रा सह रता गन्धमादनपर्वते ॥'' अर्थात वे सभी वेद के पंडित, शूरवीर और अच्छे चरित्र वाले हैं तथा अपने पिता के साथ गंधमादन पर्वत पर रहते हैं।

लंका का प्रतापी और अत्यंत शूरवीर राक्षस सम्राट रावण का उल्लेख केवल रामकथाओं में हुआ है। यह ऋषि पुलस्त्य का पौत्र तथा विश्रवा का पुत्र था। इसकी माता का नाम कैकसी था। इसके दो भाइयों के नाम कुंभकर्ण तथा विभीषण थे। शूर्पनखा इसकी बहन थी।

'रावण' शब्द का अर्थ है, भयंकर शब्द (रव) करने वाला। शायद इसीलिए उसे 'दशमुख' या 'दशानन' कहा गया। पद्मपुराण के अनुसार, हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु दूसरे जन्म में रावण और कुंभकर्ण के रूप में उत्पन्न हुए। देवीभागवत के अनुसार, विष्णु के पार्षद द्वारपाल शापित हो कर असुरयोनि में रावण और कुंभकर्ण दो भाई बन कर जन्मे। विष्णु के पार्षद के रूप में इनके नाम जय और विजय थे।

रावण की दो स्त्रियों का उल्लेख है मंदोदरी और धान्यमालिनी। इनके अलावा उसने युद्ध में परास्त कर अनेक देवों, गंधर्वों आदि की कन्याओं से भी विवाह किया था जिनसे इसने अनेक संतानें पैदा की। इसके प्रमुख पुत्रों में मेघनाद, अक्ष, अतिकाय, नरांतक, देवांतक आदि हैं।

दानवाकृति-3



कुछ विद्वानों का मानना है कि रावण और उसकी राक्षस प्रजा का विंध्य प्रदेश तथा मध्य भारत में निवास करने वाली अनार्य जातियों से संबंध था। कुछ विद्वानों का मत है कि राम-रावण के युद्ध की कल्पना इंद्र और वृत्रासुर संग्राम के आधार पर की गयी। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि समस्त हिंदू धर्म-साहित्य ही आर्य-अनार्य के बीच के संघर्ष पर आधारित हैं। आर्यों के हृदय में अनार्यों के प्रति जो घृणा थी, उसी घृणा के उदर से दानव, राक्षस या असुर का जन्म हुआ। आर्यों ने समस्त मानवीय दुर्वृत्यों और कुकृत्यों का आरोपण उन कल्पित राक्षस पात्रों में किया जिसके आधार पर उन्होंने धार्मिक साहित्यों और पुराणों की रचना की।

कहा जाता है कि रावण महान पंडित, कुशल राजनीतिज्ञ, अत्यंत पराक्रमी योद्धा और महान शिव-भक्त था। तुलसीदास ने रावण की दुष्टता, क्रूरता, लंपटता और अहंकार भावना के साथ ही उसकी रामभक्ति का चित्रण किया है। वैरभाव से निरंतर राम का भजन करते हुए अंत में वह राम के हाथों वध पा कर सद्गति का भागी हुआ। उसका संपूर्ण तेज राम में समा गया।

पाठ-19

मिथिला चित्र में जीवाकृति

मिथिला चित्रकला में परंपरागत रूप से अधिक जीव-जंतु सम्मिलित नहीं हैं, किंतु जो भी जीव प्रचलित हैं वे सभी प्रतीकात्मक हैं। यह एक पुरातात्विक रहस्य का विषय है कि मिथिला चित्रकला में प्रयुक्त अधिकांश जीव-जंतु और अलंकरण के चिन्हों का प्राचीनतम साक्ष्य सिंधु-घाटी की संस्कृति में पाए जाते हैं। सिंधु-घाटी के सांस्कृतिक स्थलों के उत्खननों से जो मूहरें, मुद्राएँ, पट्टिकाएँ और मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं उन पर हाथी, मत्स्य, सर्प, मोर, वृषभ, सिंह, बिच्छू, शंख जैसे जीव उत्कीर्ण हैं। सिंधु-घाटी की लिपि अभी तक पठनीय नहीं हो पायी है, जिस कारण यह जानना तो कठिन है कि उनके समाज में इन प्रतीकों के क्या अर्थ थे किंतु मिथिला चित्र में इन प्रतीकों की शब्दावली को पारंपरिक प्रयोजनों के आधार पर अवश्य समझा गया है। इन चित्रों में से अधिकांश एक साथ वैवाहिक तांत्रिक चित्र 'कोबर' में देखे जा सकते हैं। प्रतीक रूप में प्रचलित इन जीवों के संबंध में संक्षिप्त जानकारी नीचे दी जा रही हैं।

हाथी मिथिला चित्र और मैथिल कर्मकांडों में एक महत्वपूर्ण अवयव है। मिथिला में जब किसी परिवार में मुंडन-उपनयन या विवाह का शुभ अवसर उपस्थित होता है, उस समय विधियों के संपादन के लिए सर्वप्रथम एक मंडप का निर्माण किया

जाता है जिस पर सभी कर्मकांड पूरे किए जाते हैं। इसके बाद मंडप पर कुंभकार द्वारा निर्मित मिट्टी से बना हाथी स्थापित किया जाता है। हाथी की पीठ पर एका-एकी चार कुंभ रखे जाते हैं। हाथी का अंकन कोबर चित्र में तो रहता ही है, कोबरघर में पृथक रूप से एक हाथी स्थापित किया जाता है जो गौर-पूजन विधि के लिए आवश्यक होता है। मिथिला चित्र में हाथी शांति, समृद्धि और सौभाग्य का प्रतीक होता है।

मत्स्य समस्त मैथिल समाज, संस्कृति और कला में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। मिथिला में मत्स्य को शुभ-सूचक और सौभाग्यदायी कहा गया है। लोकमान्यता है कि कहीं की यात्रा पर निकलते समय मछली देखना सफलता देने वाला कहा गया है। मिथिला चित्र में मछली को इच्छा की तरह चंचल, जलमय तरल जीवन की संगिनी, आनंद और ऊर्वरता के प्रतीक के रूप में देखा जाता है। पौराणिक मतानुसार, विष्णु का प्रथम अवतार मत्स्यावतार है। मिथिला की स्त्रियाँ अपने पति के जीवित रहने तक ही माछ का आस्वादन करती हैं।

सर्प को मिथिला संस्कृति, दंत साहित्य, धार्मिक परंपरा और कला में रक्षक तथा सौभाग्यदाता के रूप में देखा जाता है। मिथिला में, सावन मास में, नागपंचमी की तिथि से लगभग पंद्रह दिनों तक चलने वाला एक महत्वपूर्ण धार्मिक-सांस्कृतिक पर्व का आयोजन होता है, मधुस्रावनी। इस पर्व का आयोजन मुख्य रूप से नवविवाहिता स्त्रियों के लिए होता है। यह चित्र, गीत, साज-सज्जा, फूल-पत्ता और पौराणिक विविध कथाओं के श्रवण का पर्व होता है जिसे श्रद्धा और उल्लास के साथ मनाया जाता है। विद्यापति के गीतों में सर्प को उग्र कामोत्कर्ष का प्रतीक कहा गया है।

मोर शांतिमय सुखद जीवन का प्रतीक है। मिथिला के कृषि-प्रधान समाज में मोर का इस बात से भी महत्व है कि उसे मेघ के साथ प्रेम-संबंध है। प्रकट रूप में मोर मिथिला में नहीं पाए जाते हैं किंतु मिथिला चित्रकला में मोर को प्रेम-सखा कहा गया है।

शुक या **सुग्गा** मिथिला चित्र का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्षी है जो प्रेम और सौंदर्य के देवता कामदेव का वाहन होने के कारण प्रेम का प्रतीक कहा गया है। हरे पंख और लाल ठोर वाला सुग्गा प्रेममय मैथुन का द्योतक होने के कारण कोबरघर की भित्ति पर (मैथुनरत युग्म शुक) अनिवार्यतः अंकित किया जाता है जिसे लटपटिया सुग्गा कहा जाता है। मिथिला चित्र में भाग्य-लेखक 'विध-विधाता' का उल्लेख हुआ है जो कपोतरूप हैं। 'बिध' (विधि) ममतामयी स्त्री है और 'विधाता' सृष्टि के कठोर नियमों से बँधा दैवी पुरुष।

सिंह आद्याशक्ति भगवती दुर्गा का वाहन होने के कारण शक्ति और न्याय का प्रतीक माना गया है। सिंह के ऊपर कमलासन और उस पर आसीन भगवती! मिथिला चित्र में सिंह को हिंस्र पशु नहीं, घर-आँगन का रक्षक कहा गया है।

मिथिला चित्र में और भी कई जीव-जंतुओं, जैसे बिच्छू, मेढक, कच्छप, काँकोर आदि का प्रयोग होता है। ये सभी उर्वरता के प्रतीक हैं। इन जीवों में सबसे निराला स्थान शंख का है। शंख की उत्पत्ति समुद्र से होने के कारण उसे लक्ष्मीजी का भाई कहा गया है। शंख को अटल निश्चय, आरंभ और समृद्धि का वाहक मान कर मिथिला के शिल्पी अपने चित्र में आदर पूर्वक स्थान देते हैं।

जीवाकृति : सामा-चकेबा

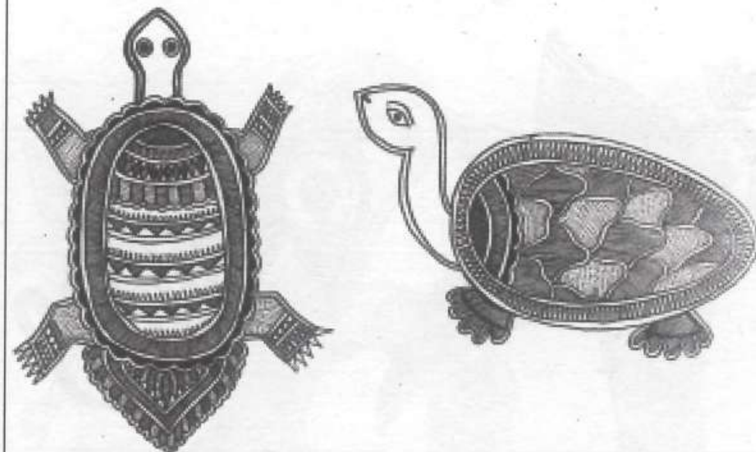
'सामा-चकेबा' मिथिला की स्त्रियों का लोक-पर्व है। गीत और शिल्प के इस उत्सव के पात्र, कृष्ण की बेटी श्यामा और उसके प्रेमी को कृष्ण ने शाप देकर पक्षिरूप सामा-चकेबा बना दिया। श्यामा के भाई के प्रयास से कृष्ण ने प्रेमी-युगल को फिर शाप-मुक्त किया।

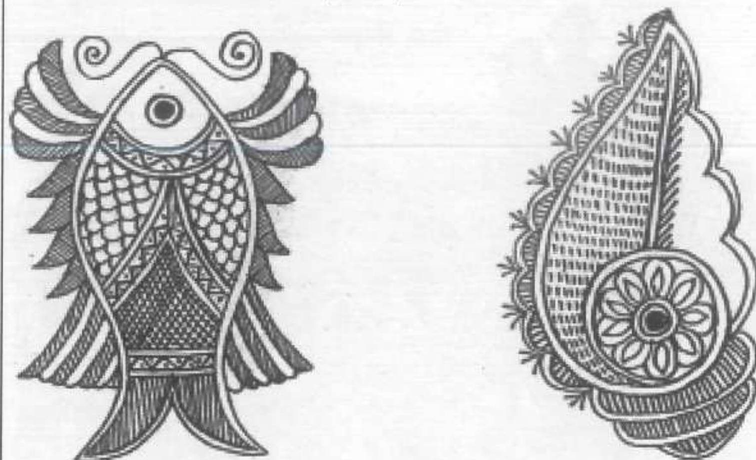
जीवाकृति : बिध-विधाता

मिथिला-परंपरा में, जब किसी शिशु का जन्म होता है तब जन्म के छठे दिन, अर्ध रात्रि के समय, षष्ठी देवी (तांत्रिक देवी छिन्नमस्ता) की पूजा होती है। उस पूजा में बिध और उसके पति विधाता भी आमंत्रित रहते हैं। ये दोनों मनुष्य के भाग्य का निर्णय करनेवाले देवता हैं जो पक्षिरूप में षष्ठी पूजा में सम्मिलित होते हैं। बिध-विधाता शिशु के लक्षण-कर्म का आकलन करके अपना मत भगवान चित्रगुप्त को बताते हैं जिसके बाद चित्रगुप्त शिशु के जीवन में होनेवाले उत्कर्ष और सफलता का लेखा-जोखा उसके भाल पर लिखते हैं।

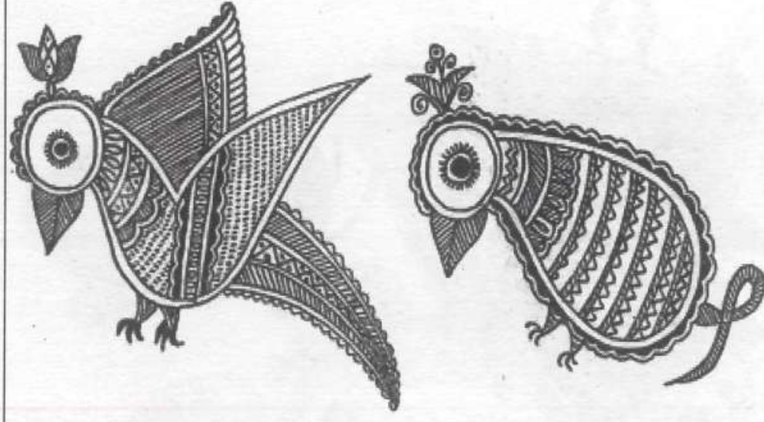



बिध-विधाता

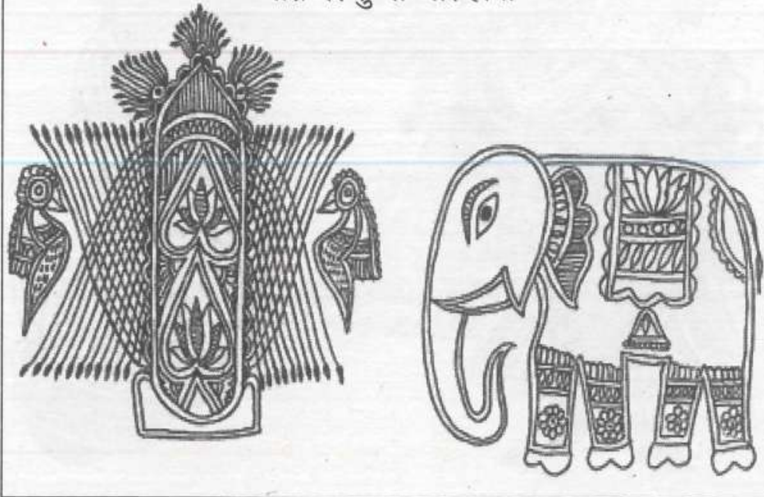
कच्छप


माछ (मछली) और शंख


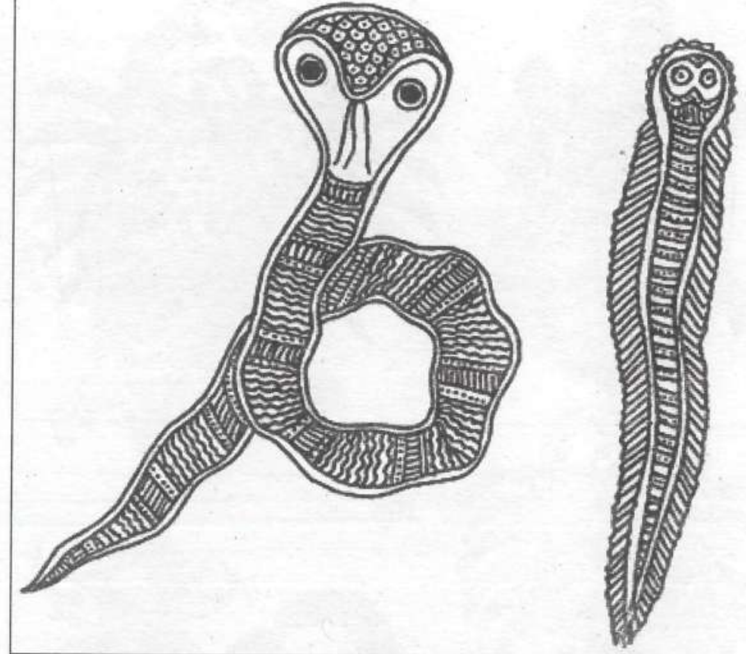
सुग्गा (तोता) और भौंरा



बाँस पर सुग्गा और हाथी



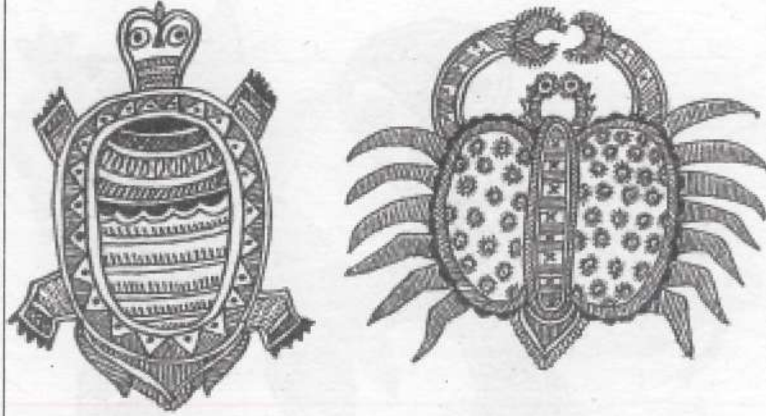
सर्प और बिच्छू



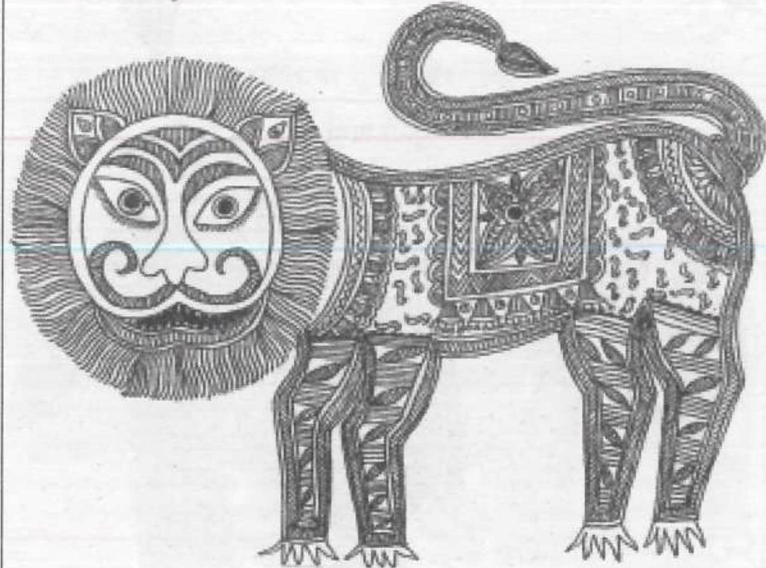
मकुनी हाथी



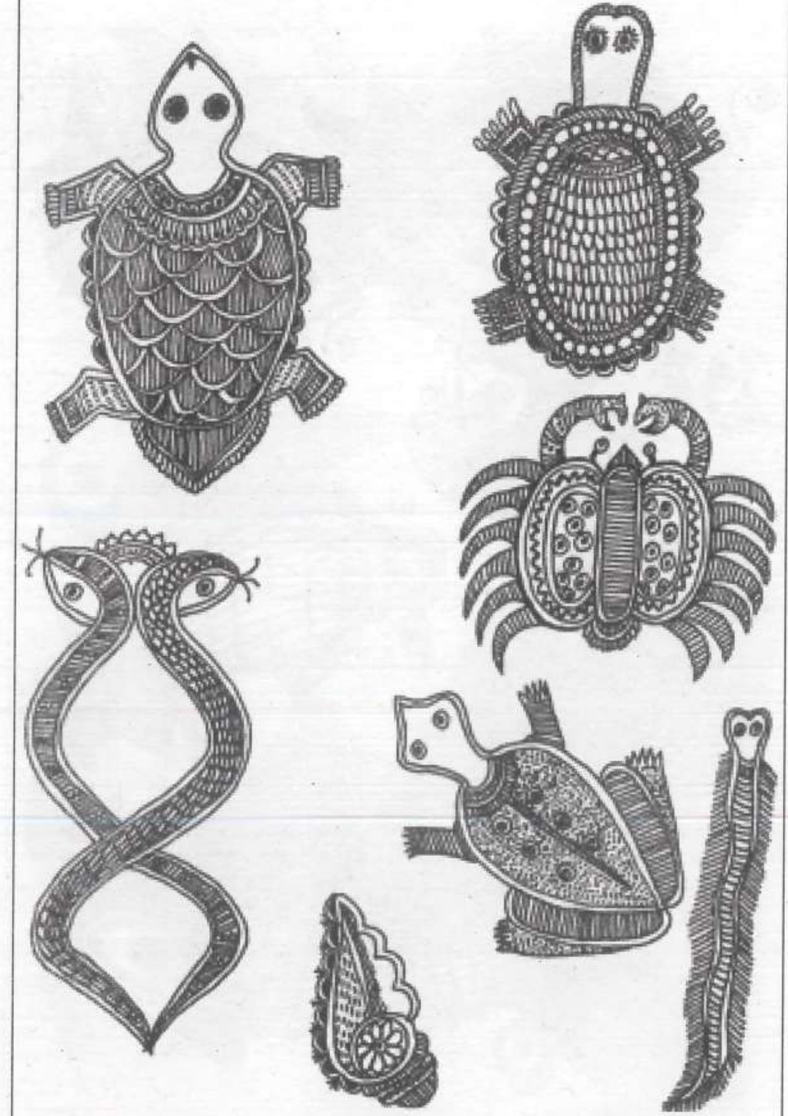
कच्छप और काँकोर (केकड़ा)



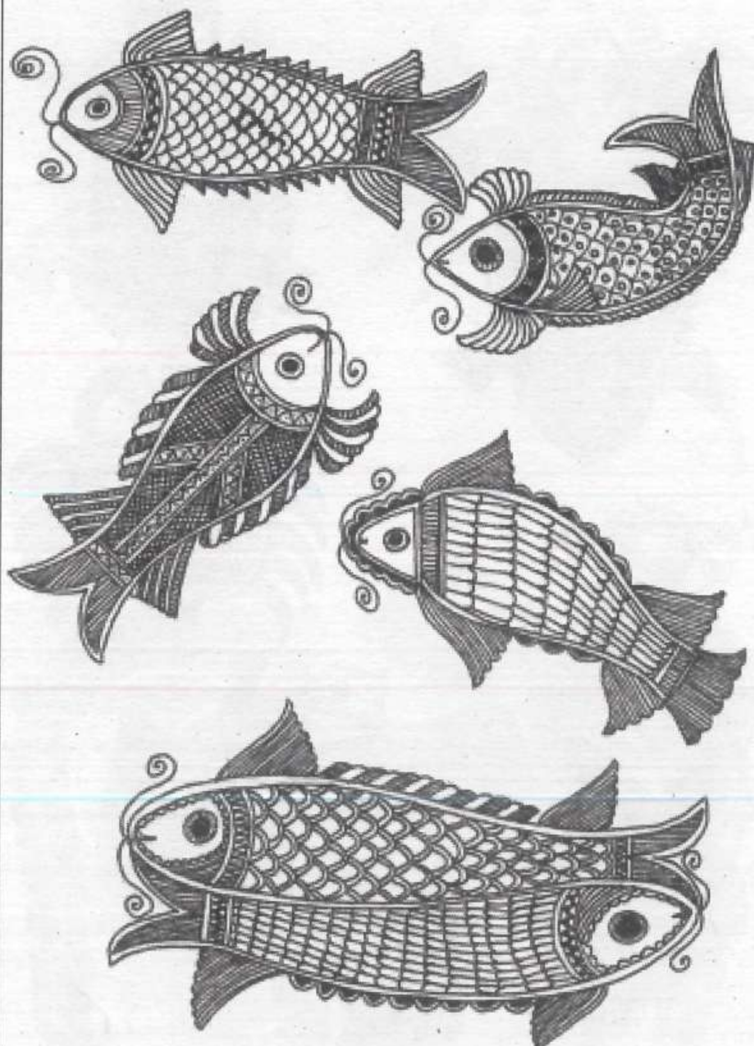
सिंह



रूपांकन : जलजंतु



माछ (मछली) के विविध रूप



पक्षियों के विविध रूप : सुग्गा (तोता), लटपटिया सुग्गा, मोर और भौंरा



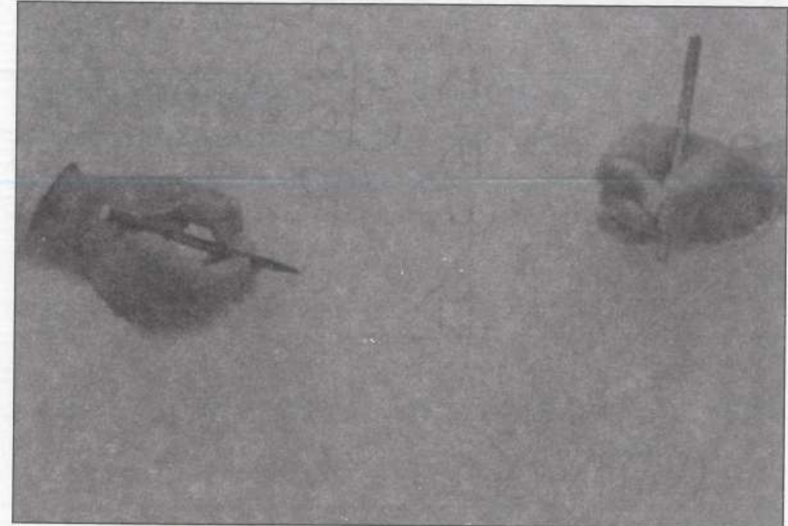
पाठ-20
मिथिला चित्रकला की विविधता

मिथिला में धार्मिक अनुष्ठान एक कला है, धर्म की कला। कला बौद्धिक रूप से धारण किया गया और भावनात्मक रूप से अनुभव किये गए विचारों की बाह्य अभिव्यक्ति होती है। धर्मविधि की कला उस विचार और भावना की अभिव्यक्ति के साथ संबद्ध होती है जो विशेष रूप से धार्मिक कहा जाता है। यह एक प्रणाली है जिसके द्वारा धार्मिक सत्य प्रदर्शित किया जाता है, और भौतिक रूप में, प्रतीकों के माध्यम से बोधगम्य बनाया जाता है। प्रतीकों का बिंबविधान समस्त प्रकृति की भावपूर्ण रूप से बोधगम्य उस सुंदरता के समर्थन से रूपायित होता है जिसमें किसी के लिए ईश्वर बार-बार अपने आप को प्रकट करता है। किंतु कला इस सबसे कहीं अधिक है, क्योंकि यह एक साधन है जिसके द्वारा मन का रूपांतरण और शुद्धिकरण होता है। खास कर भारतीय सिद्धांत के अनुसार, यह एक उपकरण है जिसके द्वारा साधक की चेतना अनुभूति के रूप-विधान को वास्तविक तथ्य के आकार में लेता है, जो सत्य का मूर्तरूप होता है, जिसकी शिक्षा धार्मिक कर्मकांडों में निहित होती है।

आज भारत समेत विश्व के अनेक देशों में जिस चित्रकला को मिथिला ही नहीं, पूरे बिहार का गौरव कह कर सम्मानित किया जाता है उसका प्रादुर्भाव लोक-परंपरा से हुआ है। सन् 1966-67 तक इसका प्रयोग न तो व्यावसायिक था और न ही असामयिक। इसका लेखन मात्र पर्व-त्योहारों और सांस्कारिक अवसरों पर किया जाता था। उन दिनों मिथिला प्रकृति की दोहरी मार से त्रस्त रहती थी; कभी बाढ़ तो कभी सुखार इसकी नियति बन गयी थी। ऐसी ही प्राकृतिक आपदाओं से जुड़े राहत कार्यक्रमों के दौरान, मधुबनी से सटे किसी गाँव में, कुछ कला-विशेषज्ञों की दृष्टि मिट्टी की दीवार पर बने भित्तिचित्रों पर गयी। विशेषज्ञों ने उन चित्रों में सृजनशीलता का अपार स्रोत देखा। बात आगे बढ़ी। विशेषज्ञों ने भारत सरकार को समझाया कि मिथिला की अव्यावसायिक महिलाओं के चित्र-कौशल को व्यावसायिक रूप दे कर उनकी दशा सुधारी जा सकती है। प्रयोग के तौर पर मधुबनी कस्बे के आस-पास के एक-दो गाँवों, जितवारपुर और राँटी की स्त्रियों को इस बात के लिए प्रेरित करने का प्रयास शुरू हुआ कि भित्ति पर बननेवाले चित्रों का लेखन वे कागज पर करें। स्त्रियाँ इसके लिए तैयार नहीं थीं। उनका विश्वास था कि आर्थिक लाभ के लिए 'भगवान से जुड़े' पौराणिक प्रसंगों का आलेखन कागज पर करना पाप है, अधार्मिक कृत्य है। बहुत कठिनाई से वे इस बात पर

राजी हुईं कि उनके द्वारा बनाए चित्र मंदिरों में लगाए जायेंगे जिससे धार्मिक भावना और दूर तक फैलेगी। महिलाओं को प्रेरित करने और चित्रों को व्यावसायिक ढाँचे में रखने के उस कठिन दौर में सबसे अधिक योगदान का श्रेय इतिहास जिन कुछ लोगों को देता है उनमें कला-विदुषी और लेखिका पुपुल जयकर, शिल्पगुरु उपेंद्र महारथी और भास्कर कुलकर्णी के नाम अग्रगण्य हैं। इन विशेषज्ञों की मेहनत रंग नहीं लाती यदि मिथिला के यशस्वी राजनेता ललित नारायण मिश्र के माध्यम से भारत सरकार इसे विश्व-कला के मंच पर लाने हेतु कमर नहीं कसती। आखिर घर-आँगन और मिथिला की वीथियों तक सिमटी चित्रकला अपने सीमित घेरे से बाहर निकली। धार्मिक वर्जनाओं और लोक-लाज के साँकलों को तोड़ कर, मिथिला के संस्कारों में पली-बढ़ी चित्रकला चटक रंगों के परिधान में जब बाहर निकली तो कला-जगत जैसे मंत्र-कीलित हो गया। जानकारों ने कहा, मिथिला की स्त्रियों के ये चित्र 'पिकासो' के चित्रों से अधिक जीवंत हैं। जापान में आयोजित **Expo-70** में इन चित्रों की विश्व-प्रशंसा से प्रभावित होकर वहाँ के कला-प्रेमी हासेगवा ने टोक्यो में 'मिथिला म्यूजियम' की स्थापना की जो आज भी इस चित्रकला का (भारत समेत) अकेला संग्रहालय है।

मिथिला चित्रकला के मुख्य घटक **भित्ति-चित्र और सजावटी चित्र, भूमि-चित्रण** या **अरिपन और मिथिला वस्त्र-चित्रांकन** हैं। इस अध्याय में हम इन तीनों घटकों का पृथक-पृथक अध्ययन करेंगे।



पाठ-21

भित्ति-चित्रण और सजावटी चित्र

आज हम कला-बाजारों में तरह-तरह के, कागज और कपड़ों पर बने, सजावटी आकृतिक मिथिला-चित्र देखते हैं जिन्हे ग्राहक महगे दामों पर फ्रेमिंग कराने हेतु खरीदते हैं। इन चित्रों का मुख्य स्रोत भित्ति-चित्रण ही रहा है। परंपरागत भित्ति-चित्रण का व्यवहार, विशेष रूप से कर्ण-कायस्थ और ब्राह्मण परिवारों में, वैवाहिक या मुंडन-उपनयन के सांस्कारिक अवसरों पर किया जाता है। इन चित्रों के कथा-स्रोत महाभारत, तुलसीदास-कृत रामचरितमानस, जयदेव-कृत गीतगोविंद, विद्यापति के पद, पौराणिक आख्यान, लोक-कथाओं और मधुस्रावनी, जितिया, सप्ता-विपता आदि व्रत-कथाओं तथा संस्कारों के कर्मकांड में निहित हैं। इन स्रोतों में भित्ति-चित्रण के विपुल भंडार समाहित हैं जिनका उपयोग शिल्पी महिलाएँ विभिन्न अवसरों पर प्रसंगानुसार करती हैं। धार्मिक और संस्कारों की रीति -विधि पर आधारित इन चित्रों का स्वरूप यद्यपि पौराणिक है किंतु इनमें अंतर्निहित अवबोध तांत्रिक और साहित्यिक हैं।

भित्ति-चित्रण का सर्वाधिक व्यवहार वैवाहिक अवसर पर होता है। वैवाहिक अवसर पर किए जानेवाले भित्ति-चित्रण रूप-रचना की दृष्टि से भी बहुत व्यापक हैं।



भित्ति-चित्रण में राधा-कृष्ण

इस अवसर पर, बाहरी दीवारों पर धनुष-यज्ञ और सीता-स्वयंवर अथवा शिव-पार्वती विवाह के दृश्य प्रमुख होते हैं जबकि कोबर-घर के द्वार पर बाँस और लाबा भूजने (भूनने) का दृश्य अंकित किया जाता है। भित्ति-चित्रण की दृष्टि से, कर्ण-कायस्थों का कोबर-घर तो एक चित्रशाला ही होता है। इस घर की पूर्वी दीवार पर विस्तृत कोबर (अरिपन) बनाया जाता है जिसके नीचे बैठ कर वर-बधू वैवाहिक कर्मकांडों का संपादन करते हैं। इस घर के चारों कोण में नयना योगिनि के चित्र बनाए जाते हैं जबकि अन्य दीवारों पर कमलदह, बर्रे और बाँस अरिपन, लटपटिया सुग्गा, नौ काम-योगिनियों से बनी हथिनी पर सवार कामदेव, दशावतार, रास और राधा-कृष्ण के प्रेम-प्रसंग चित्रित किए जाते हैं। इन निर्धारित प्रसंगों के अतिरिक्त अनेक प्रकार के वानस्पतिक चित्र और साहित्यिक कवित्त कोबर-घर की लिखिया के भाग होते हैं।



'नयना योगिनि' भित्तिलेखन

यहाँ उल्लेखनीय है कि कर्ण-कायस्थ समुदाय में जब कोई वर विवाह करने जाता है तो उसके साथ सिंदूर के छह पाकेट जाते हैं जो कोबर, कमलदह अथवा

बर्रे, बाँस और दशावतार लिखे कागज में लिपटे रहते हैं। कोबर का आलेखन उस मंडप पर भी किया जाता है जहाँ सभी वैवाहिक कर्मकांड संपन्न होते हैं। मंडप की भूमि पर पहले किसी निपुण शिल्पी द्वारा सांकेतिक कोबर अरिपन बनाया जाता है जिस पर कंबल बिछाया जाता है। इस प्रकार कोबर अरिपन का आलेखन, इस समुदाय में, भूमि पर, भित्ति पर और कागज पर सविधि किया जाता है। लगभग पाँच दशक पहले, वर जब दुल्हन की विदागरी कराने जाता था तब वह अपने साथ दुल्हन के लिए जो साड़ी ले जाता था, उसके पल्लू पर भी अरिपन बनाया रहता था; पीले रंग से रंगी साड़ी के पल्लू पर लाल रंग से लिखित कोबर।

मुंडन, उपनयन या चूड़ा-करण के अवसर पर मुख्यतया तांत्रिक-पौराणिक प्रसंगों का चित्रण भित्ति पर किया जाता है। इस लिखिया में पंचमुख शिव, अर्धनारीश्वर, काली, छिन्नमस्ता, दुर्गा और गुरु-शिष्य-परंपरा के चित्र प्रमुख हैं। दुर्गापूजा में महिलाएँ अपने घर के द्वार पर दुर्गाजी का चित्र अंकित करती हैं। इसी प्रकार, दीपावली के अवसर पर, सभी हिंदू गृहस्थ अपने घर और परिवेश की साफ-सफाई करते हैं और दीवारों पर गोबर-माटी से पुताई करने के बाद उस पर चित्रकारी करते हैं। इस चित्रकारी में अन्य चित्रों के बीच लक्ष्मीजी का चित्र प्रमुखता से चित्रित किया जाता है।

वैवाहिक अवसर पर बनने वाले चित्रों में शिव के अर्धनारीश्वर रूप का चित्रण भी एक प्रमुख विषय है। अर्धनारीश्वर का प्रतीकात्मक भाव यह है कि सृष्टि के लिए पुरुषतत्व और स्त्रीतत्व दोनों के मैथुनधर्म की आवश्यकता होती है। इस पृथ्वी पर जहाँ तक भी हम प्राणवंत सृष्टि का विस्तार देखते हैं, पिता द्वारा माता के गर्भधारण से प्रजा अर्थात मनुष्य, पशु-पक्षी, कीट-पतंग, वृक्ष-लतादि समस्त जीवों की उत्पत्ति होती है। सृष्टि के इस आदिभूत मातृत्व और पितृत्व को ही पौराणिक प्रतीक भाषा में अर्धनारीश्वर कहा जाता है। यही शिव और पार्वती हैं। यही पिता और माता हैं। वैदिक साहित्य के अनुसार, जो शिव है, वही रुद्र है, वही पुरुष है; और जो पार्वती है, वही अंबिका है, वही स्त्रीतत्व है। पुरुष में अग्नितत्व प्रधान होता है और स्त्री में सोम प्रधान होता है, किंतु वैदिक प्रमाण यह है कि सोम अग्नि के साथ ही उपस्थित रहता है। अर्थात जहाँ-जहाँ अग्नि है, वहीं आधा भाग सोम का भी है। इसका अर्थ यह हुआ कि जो स्त्री है उसके अभ्यंतर में आधा भाग पुरुष-तत्व विद्यमान रहता है, जैसे पुरुष के अभ्यंतर में स्त्री-तत्व। इसी अर्थ में, स्त्री का शोणित आग्नेय और पुरुष का शुक्र सौम्य भाव से युक्त रहता है। शुक्र और शोणित अथवा वृषा और योषा ही विज्ञान की भाषा में नर और मादा कहे जाते हैं। पुरुष द्वारा नारी में जो बीजार्पण होता है, नारी अग्नि के उस अंश को अपने

गर्भ में ले कर अपनी मात्रा से उसका संवर्द्धन करती है और उसी से प्रजा की सृष्टि होती है। अग्नि में सोम की आहूति या अग्नि और सोम का समन्वय ही शिव और शक्ति का संयोग है; शिव और शक्ति, जिसकी अनुपस्थिति में शिव भी निष्क्रिय हो जाता है और जिस शक्ति से संयुक्त होते ही शिव तत्क्षण अपने पंचकर्म में प्रवृत हो जाता है। शिव और शक्ति का वह ऐक्य भाव ही शिव का 'पार्वतीपरमेश्वर' अथवा 'अर्धनारीश्वर' रूप है।

मैथिल समाज में शाक्तधर्म की प्रबलता के कारण यहाँ के धार्मिक और सांस्कारिक कर्मकांडों में तंत्र और दशमहाविद्या की प्रचुरता रही है। मिथिला में प्रमुख वैवाहिक अरिपन कमलदह, बर्रे और बाँस की अधिष्ठात्री देवी दशमहाविद्या की कमलात्मिका, त्रिपुर/त्रिपुरा और भुवनेश्वरी शक्तियाँ हैं, जबकि कोबर चित्र (अरिपन) में शिव-शक्ति (योग-योगिनी) का आवास कहा गया है; योगिनी-चक्र से समृद्ध कोबर तांत्रिक अरिपन है।

भित्ति चित्रों के आलेखन में दसमहाविद्या की पहली महाशक्ति काली और छठी महाशक्ति, छिन्नमस्ता प्रमुख है। मिथिला के महान कवि विद्यापति की काली-वंदना तो मिथिला में देश-गान की तरह सम्मानित है जिसके गायन से हरेक प्रकार के शुभ और सांस्कृतिक कार्य आगे बढते हैं। काली बहुतों की कुलदेवता भी हैं। विद्यापति ने भी काली के तांत्रिक स्वरूप का ही वर्णन किया है "जय जय भैरवि असुर भयाओनि, पसुपति भामिनि माया। सहज सुमति वर दिय हे गोसाओनि, अनुगत गति तुअ पाया।"

मिथिला में शाक्त धर्म की महत्ता बहुत प्राचीन काल से है। यहाँ देवी के शक्ति-रूप की व्याख्या अनेक प्रकार से हुई है। शक्ति शब्द संस्कृत के शक् धातु से बना है जिसका अर्थ होता है समर्थ होना या शक्ति रखना। यह अर्थ किसी प्रकार की क्रियाशीलता के साथ लागू हो सकता है। देखने की शक्ति को दृष्टि-शक्ति कहा जाता है, जलने की शक्ति को दहन-शक्ति या अग्नि की शक्ति कहा जाता है और इसी प्रकार अन्य सभी क्रियाशीलता को शक्ति की क्रिया कहा जाता है। ऐसी सभी प्रकार की क्रियाशीलता अंततः उसी आद्य शक्ति का लघु रूप है, जहाँ से सभी प्रकार की शक्ति इस ब्रह्मांड में जनमी थीं। सभी वस्तुओं के साथ उसके मूल उद्गम के रूप में संबद्ध होने के कारण शक्ति को 'योगिनी' कहा गया है। उसी मूल शक्ति को पूजा-आराधना में देवी या अनेक नामवाली माता कहा गया है "या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः।"

सन् 1970-80 तक ग्रामीण मिथिला के अधिकांश घर कच्ची मिट्टी की दीवारों से बने होते थे। उन दीवारों को चित्र-पट की तरह इस्तेमाल करने के लिए पहले उसे

गोबर-माटी के घोल से लीपा जाता था, फिर उस पर चूने से पुचारा किया जाता था। इस तरह के विस्तृत पट पर रामायण के प्रसंगों का चित्रण करने के लिए शिल्पी महिलाओं के बीच एक फार्मूला बहुत प्रसिद्ध था, "आदौ राम तपोवनादि गमनं हत्वा मृगं काञ्चनं। वैदेही हरणं जटायु मरणं सुग्रीव संभाषणम्...।" इस फार्मूले के तहत सीता-राम-लक्ष्मण का वन-गमन, और आगे की घटना का चित्रण होता था। कभी-कभी सीताजी के जन्म, उनके द्वारा शिव-धनुष उठा कर घर लीपना, पुष्प-वाटिका में सीता-राम का प्रथम दर्शन, राम द्वारा शिव-धनुष तोड़ना और सीता-राम स्वयंवर का चित्रण शिल्पियों का प्रमुख विषय था। इन प्रसंगों का जब कागज पर व्यावसायिक रूपांतरण हुआ, तब भी ये प्रसंग ग्राहकों के आकर्षण के कारण थे।

आज-कल गाँवों में भी मिट्टी के दीवारों से बने घर कम ही मिलते हैं। मिट्टी के दीवाल पर बनने वाले भित्तिचित्र बहुत टिकाऊ नहीं होते थे। स्थानीय बाजारों में मिलने वाले पुड़िया-रंग पानी में घोल कर तैयार किए जाते थे और उनसे बने चित्र दीवालों पर छह महीने या साल भर के बाद हल्के पड़ने लगते थे। लोग भी यही चाहते थे, ताकि नए सीजन या शुभ अवसर पर फिर से चित्र बनाए जाँय। दीवारों पर चित्र बनाना ग्रामीण महिला शिल्पियों के लिए एक उत्सव की तरह होता था। अब लोगों के घर पक्की ईंट के बने होते हैं जिन पर रासायनिक रंग से चित्र बनते हैं। ये चित्र बहुत लंबे समय तक बने रहते हैं, किंतु दीवारों के बदलने के साथ लोगों की रुचि भी बदल गयी है। भित्तिचित्र अब बहुत कम देखने में आते हैं।

मिथिला चित्र में जिस प्रसंग की उपस्थिति सर्वव्यापी है, वह है राधा-कृष्ण का प्रेम-विषयक प्रसंग। इस प्रसंग का प्राधान्य भित्ति-चित्रों में भी और व्यावसायिक चित्रों में भी समान रूप से रहा है। कोबर-घर की भित्ति पर इस प्रसंग की अनुपस्थिति को अधूरेपन का द्योतक माना जाता है। इन चित्रों के साहित्यिक स्रोत जयदेव का 'गीतगोविंद' और विद्यापति के पद हैं। कहा जाता है कि कर्ण-कायस्थों के कोबर-घर में जिस 'दशावतार' का लेखन भित्ति पर किया जाता है, उसका रीति-विधान गीतगोविंद की रचना के बाद ही कर्णाट राजाओं ने किया था। यहाँ उल्लेखनीय है कि मिथिला की ग्रामीण गीत-गायनि परंपरा में सोहर, पावस, वसंत और झूला विषयक गीतों का मुख्य तत्व राधा-कृष्ण का प्रेम ही है जिसका सिंचन गीतगोविंद, सुखसागर और विद्यापति-पदावली के द्वारा कई शताब्दियों से होता रहा है। इन सभी स्रोतों में गीतगोविंद अन्योनाश्रित है। इस कृष्णामृत काव्य की रचना सन् 1156 में हुई। कहते हैं कि जयदेव ने ही राधा को 'राधा' नाम दिया; प्रेम, काम और कमनीयता के प्रतिनिधि अक्षय स्रोत के रूप में। एक समय था, जब मिथिला की गीतगायिनि स्त्रियाँ शुभ अवसरों पर और



जयदेव के काव्य 'गीतगोविंद' पर आधारित राधा-कृष्ण

कीर्त्तन-भजन के रूप में गीतगोविंद और विद्यापति के पदों का गायन अवश्य करती थीं। सांस्कृतिक उदात्तता के ये चिन्ह अब कहीं परिलक्षित नहीं होते हैं, किंतु मिथिला की चित्रकला आज भी राधा-कृष्ण के अनूठे रंग से सराबोर है।

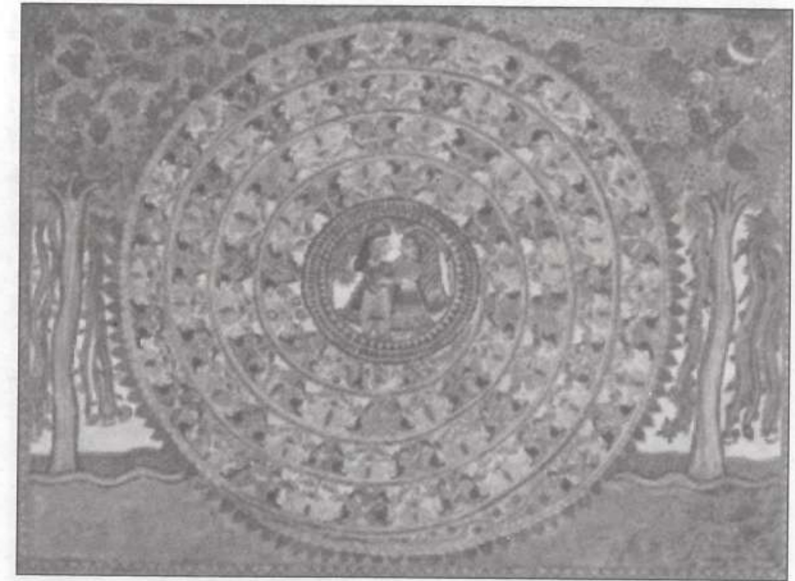
यद्यपि कि कोबर-घर के भित्ति-चित्रों में और पृथक रूप से 'रास' में राधा-कृष्ण के प्रेम-प्रसंग का चित्रण बहुत पुराने समय से बना हुआ है, किंतु व्यावसायिक चलन के प्रारंभिक दशक, सन् 1980-82 तक, इसका रूप विशुद्ध पौराणिक था। इस दौर के चित्रों में कारागार में कृष्ण का जन्म, वसुदेव द्वारा नवजात कृष्ण को गोकुल ले जाना, पालने में खेलता बच्चा कृष्ण, मायावी राक्षसों द्वारा शिशु कृष्ण के वध का प्रयास और इस क्रम में कृष्ण का युद्ध आदि दृश्य प्रमुखता से चित्रित हुए हैं। राधा-कृष्ण के आध्यात्मिक प्रेम का प्रदर्शन 'रास' में हुआ है। इसका प्रथम उल्लेख भागवत पुराण के पाँचवें अध्याय में हुआ है जिसे 'रास पंचाध्यायी' कहा जाता है। भागवत पुराण के इन पाँचों अध्यायों को इस पुराण के प्राण कहा गया है, क्योंकि इन अध्यायों में श्रीकृष्ण की दिव्य लीलाओं के माध्यम से प्रेम और समर्पण की प्रतिष्ठा की गयी है। माना गया है कि 'रास-लीला' के उपासक भक्त कामजय की सिद्धि प्राप्त करते हैं।



जयदेव के काव्य 'गीतगोविंद' पर आधारित राधा-कृष्ण

मिथिला चित्रकला की मूल अभिव्यंजना स्वतः पर्यावरणिक है; यही कारण है कि इन चित्रों में लता, पुष्प, वृक्ष आदि किसी न किसी स्थान पर प्रकट होते रहते हैं, किंतु श्रीकृष्ण के जीवन-चरित ने विशेष रूप से इस कला को पर्यावरण-दृष्टिकोण का अवदान दिया है। गो-वंश की रक्षा और उसके संवर्द्धन में सदैव तत्पर रहना, यमुना के जल को प्रदूषित कर रहे कालिया नाग का दमन करना, इंद्र के स्थान पर गोवर्द्धन पहाड़ को पूजा-सम्मान देना, वृंदावन के विपिन-कानन में केलि-कौतुक करना ये सभी मिल कर मिथिला चित्रकला में एक पर्यावरणिक दृष्टिकोण का सृजन करते हैं। आगे चल कर, सन् 1985 के बाद, इस कला में बने पर्यावरण के कुछ अनूठे चित्रों ने अंतर्राष्ट्रीय कला-बाजारों में भरपूर प्रशंसा प्राप्त की।

पर्यावरण चित्रों की श्रृंखला में, शशिबाला के साथ मिल कर इस लेखक के तीन चित्र गंगावतरण, जमदग्नि और धूमराकस काफी चर्चित रहे हैं। इन चित्रों की आधार कथावस्तु, मिथिला चित्रकला के स्वरूप की तरह ही पौराणिक है जिसे समकालीन पर्यावरण-विज्ञान की समस्याओं के साथ जोड़ा गया है। 'गंगावतरण' का कथा-सूत्र मैथिली के प्रख्यात दिवंगत कवि दामोदर लाल के गंगा-गीत से आगे बढ़ता है, ''हरिक चरण-नख निर्गत सुरसरि, बुझि चरणामृत धार रे। चतुरानन भरि अपन कमंडल, राखल



'रास' का तांत्रिक रूप (कागज पर)

वैभव सार रे।'' विष्णु के चरण-नख से निर्गत हो कर गंगा जब आगे बढ़ी तो चतुरानन ब्रह्मा ने उसे अपने कमंडल में धारण कर लिया। भगीरथ की घोर तपस्या के बाद गंगा जब पृथ्वी पर आने को तैयार हुई तो शिव ने उसके प्रबल वेग को अपनी जटा में घेर कर शांत कर दिया। गंगा जब लोकहित के लिए धरा-धाम में प्रवाहित होने लगी तब वह धर्म और मुक्ति का माध्यम बन गयी। यही उसके लिए संकट का कारण बन गया। लोग यह सोच कर शव को गंगा में बहाने लगे कि इससे मृतक को मुक्ति प्राप्त होगी। शव-वाहिनी गंगा धीरे-धीरे तटवर्ती शहरों के मल और औद्योगिक कचड़ों को भी धारण करने लगी। इसका परिणाम क्या हो सकता है? ढाई मीटर लंबे सिल्क पर बने इस चित्र के मध्य में एक प्रशस्त वृक्ष बना है, जीवन-वृक्ष। इस वृक्ष का आधा भाग, गंगा की धारा को छूता भाग, सूख गया है। यही इस चित्र का कथ्य है।

दूसरे पर्यावरण चित्र 'जमदग्नि' का कथा-सूत्र महाभारत से लिया गया है। परशुराम के माता-पिता, रेणुका और जमदग्नि तीर-धनुष का खेल खेल रहे थे। ऋषि तीर छोड़ते थे और रेणुका उसे चुन कर लाती थी। संयोगवश एक तीर सूर्य के निकट चला गया जिसे लाने में रेणुका झुलस गयी। उसे संतप्त देख कर ऋषि क्रोधित हो उठे। उसने सूर्य को विखंडित करने के निश्चय के साथ शर-संधान किया। सूर्य जमदग्नि को क्रुद्ध देख कर, ब्राह्मण वेश में, एक जोड़ा जूता और एक छाता ले कर आया। उसने

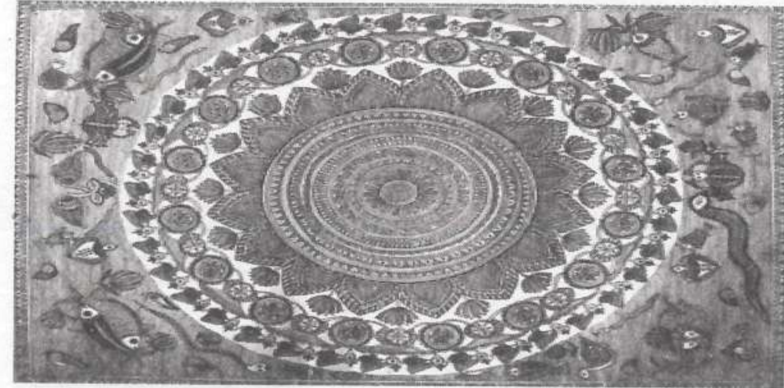
कहा कि यह तो उसकी प्रकृति है कि जो कोई उसके निकट जाएगा, जल जाएगा, किंतु जो व्यक्ति जूता और छाता धारण करेगा, उसे उसकी किरणें कम दग्ध करेंगी। चित्र के दूसरे भाग में, सूर्य के इस छाते का पर्यावरण उद्देश्य से उपयोग किया गया है। अंतरिक्ष में ओजोन गैस का आवरण छाते की तरह सूर्य की घातक पराबैंगनी किरणों से पृथ्वी की रक्षा करता है। दुर्भाग्यवश, विलासिता-सामग्रियों के उपयोग में आने वाले फ्रिऑन 11, फ्रिऑन 12, क्लोरोफ्लोरो कार्बन आदि गैस अंतरिक्ष में ऊपर उठते जाते हैं (उपयोग के बाद भी ये नष्ट नहीं होते) और ओजोन की छतरी में छेद कर रहे हैं। मानवीय कारणों से हो रही इस क्षति का परिणाम क्या होगा? रक्षा-कवच में ही जब छेद हो जाएगा तब पराबैंगनी किरणों से जीवों की रक्षा कैसे होगी?

'धूमराकस' चित्र भी लगभग ढाई मीटर लंबे सिल्क पर बना है। इसके आधे भाग में पौराणिक देवासुर संग्राम का चित्रण हुआ है। पौराणिक आख्यानों के अनुसार, असुर लोग आकाश मार्ग से युद्ध करते थे और विष-वमन करते थे। आधुनिक युग में देवता तो कहीं दिखते नहीं हैं, किंतु असुरों ने बड़े-बड़े रासायनिक फैक्ट्रियों के रूप में नया अवतार ले लिया है। इन फैक्ट्रियों की चिमनी से सल्फर और नाइट्रोजन के ऑक्साइड निकलते हैं जो वातावरण की नमी के साथ मिल कर नाइट्रिक एसिड, सल्फ्यूरिक एसिड के रूप में वायुमंडल में अँटके रहते हैं और समय-समय पर तेजाबी वर्षा करते हैं। इस तरह की तेजाबी वर्षा जल-जंतुओं के लिए तो घातक है ही, खेतों में ऐसा जल पड़ने से भूमि की ऊर्वरता भी नष्ट होती है।

प्रकट रूप से मिथिला चित्रकला पर्यावरण के दृश्यों से भरा होता ही है, इसके प्रतीकों में बहुत ऐसे जीवों की पुनरावृत्ति होती रहती है जो प्रकृति के, वन्य जीवन के खास अंग हैं सिंह, बाघ, हाथी, सर्प, पक्षी, मछली के साथ अन्य जल-जंतु (काँकोर, बिच्छू, शंख, मगर आदि), कई पादप (आम, महुआ, केला, नारियल, बेल, लवंग और इलांयची) तथा कमल। व्यवहारतः मिथिला चित्र का कोई भाग खाली नहीं छोड़ा जाता है, रिक्त स्थान को किसी पुष्पित लता से अलंकृत कर दिया जाता है। इन्हीं कारणों से मिथिला चित्र को पर्यावरण संरक्षण के कलात्मक माध्यम के रूप में देखा जाता है।



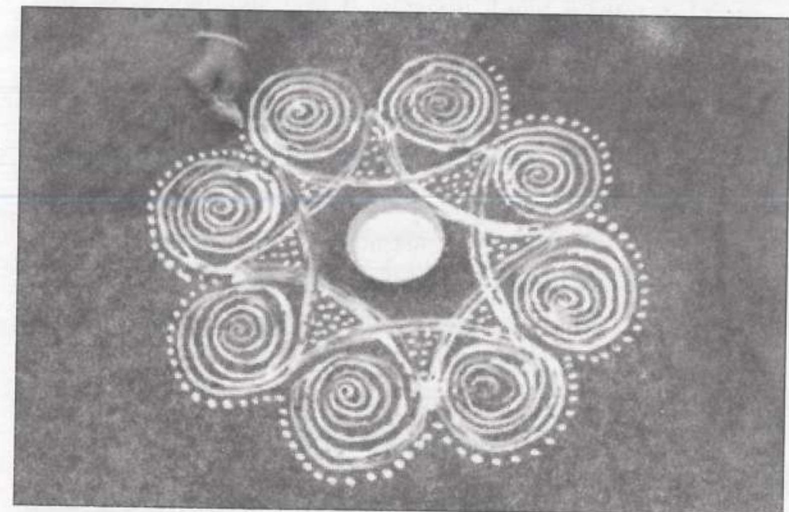
भाग-3



पाठ-1

अरिपन

समवेत मिथिला कलाओं में 'अरिपन' अथवा 'भूमि-चित्रण' का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। इसका प्रशिक्षण मैथिल कन्याओं को बाल्यकाल से ही प्राप्त करना होता है। जो कन्या अरिपन के आलेखन में दक्ष नहीं होती है, आगे चल कर 'अलूरी' या अकुशल कही जाती है। तंत्र से उत्पन्न, शुभ अवसरों की सहचरी, अरिपन का आविर्भाव पारिवारिक समस्त समारोहों और व्रत-अनुष्ठानों से जुड़ा है। अरिपन-आरेखन की प्राचीनता के साक्ष्य लगभग पाँच हजार वर्ष पूर्व की सिंधु घाटी-संस्कृति के पुरावशेषों, मुद्रा और तावीजों पर पूर्ण विकसित प्रतीकों के रूप में और मध्य भारत के शैल-चित्रों में प्राप्त होते हैं। अरिपन पुरातन स्त्रियों के ब्रह्मांडोत्पत्ति से संबंधित अवबोधन का एक जीवित दस्तावेज है, ज्यामितिक माध्यम से उस ज्ञान की



भूमिचित्रण (अरिपन) की लिखिया

अभिव्यक्ति का एक अवाचिक पद्धति है, एक साधारण बिंदु से अपरिमित दैवी साम्राज्य तक की यात्रा का परिपथ है; बिंदु से जटिल ब्रह्मांड तक वृत्त, दोहरी वृत्त, कुंडली, कचनी, क्रॉस, त्रिभुज, चौकोण, षट्कोण, अष्टकोण और नक्षत्र, वृक्ष-लतादि, जलाशय, जीव-जंतु तथा भिन्न-भिन्न संख्यावाले कमल-दलों से निर्मित एक संसार-रचना का बाह्य मानसदर्शन है। सार्वजनिक कल्याण की विशुद्ध कामना की अभिव्यक्ति के रूप में, सर्वव्यापी देव-देवी को अर्पित कोमल मनोभावों की चित्रलिपि, आद्यकालीन लेखार्पण की पद्धति में, अरिपन को 'लिखिया', अर्थात लिखने की कला कहा जाता है।

वे सभी स्त्रियाँ हैं, मात्र मिथिला की स्त्रियाँ जो प्राचीन स्मृति की वाग्विदग्ध श्रुतिकथाओं का अंकन करती हैं, पुराकालिक संस्कृति की पाठ-पोथी रचती हैं, जिसके सम्मोहन में बँध कर क्षितिजवासी देवता भी पृथ्वी की ओर आविष्ट होते हैं और मानवीय अंतस्तत्व से उपजे अपना एक रूप ग्रहण करते हैं। भक्तिमय धार्मिक समर्पण से आवेशित, मन में गीत, मंत्र, कथा और ज्यामितिक आकारों के अर्घ, और उँगलियों की टुरनी पर प्राणदायी चावल के श्वेत रस, पिठार के साथ जब वह शिल्पी बन कर अपनी चार उँगलियों के कमलदल-कोश, दैहिक लेखनी को लिपी-पुती चिकनी भूमि पर रखती हैं तो स्वतः एक देवता के रूप में परिवर्तित हो जाती हैं; एक साथ ही देवता और पुजारी बन जाती हैं। मैथिल स्त्रियाँ मानती हैं कि ऐसा ही अर्पण, संपूर्ण भावमय समर्पण चित्ररूप में 'अरिपन' कहा जाता है।

अरिपन की लिखिया मुख्यतः गोबर-माटी से लिपी पवित्र भूमि पर की जाती है, किंतु भित्ति, कागज और कपड़े पर भी इसके आलेखन का विधिगत विधान है। भूमि पर आलेखन करने के लिए अरवा चावल को छह-सात घंटे पानी में रख कर फुलाया जाता है। जल में रखा चावल जब अच्छी तरह से फूल कर मुलायम हो जाता है तब उसे पत्थर के सिल-बट्टे पर महीन पिसा जाता है। महीन पिसे चावल की लोई को जब पानी में मिला कर श्वेत रंग तैयार किया जाता है तब उसे 'पिठार' कहते हैं। अरिपन की शिल्पी महिलाएँ अपनी चार उँगलियों के कोश में पिठार को इस प्रकार उठाती हैं कि उसमें से रंग टपक कर भूमि पर नहीं गिरे। अब प्रारंभ होता है अरिपन का आलेखन। कोई शिल्पी एक साथ दो उँगलियों से आलेखन करती है जबकि कोई मात्र एक उँगली की नोक से आलेखन करती है। अरिपन के आलेखन में अभ्यास से दक्षता आती है।

भूमिचित्रण की परंपरा, भिन्न-भिन्न रूपों में, भारत के प्रायः सभी क्षेत्रों में पारंपरिक रूप से विद्यमान है। मिथिला में भूमिचित्रण की कला को अरिपन, बंगाल में अल्पना, उड़ीसा में ओसो, उत्तर प्रदेश में चौक, राजस्थान में मेंहदी-मंडना,

गुजरात में सठिया, महाराष्ट्र में रंगोली और तमिलनाडु में कोलम कहा जाता है। आश्चर्यजनक रूप से, आरेखन की इस क्रिया को सभी जगह शुद्धतः 'लेखन' के रूप में लिया जाता है, चित्रांकन के रूप में नहीं। संभवतः, लिखिया का यह अवबोध अरिपन के पुराकालीन चित्रलिपि से उद्‌गम को दर्शाता है।

गृह्यसूत्र और मनुस्मृति, जो संस्कारों की धार्मिक विधि और व्रत-पद्धति का विधान करते हैं, और जिसका अनुपालन प्रत्येक हिंदू गृहस्थ के लिए अनिवार्य है, गर्भावस्था और जन्म, विद्यारंभ, यज्ञोपवित अथवा विवाह से संबंधित अनुष्ठानादि में स्त्रियों के द्वारा पृथ्वी की पूजा और सज्जा के लिए गृहपूजा-मंडल लिखने का विधान करते हैं। ब्रह्मांड पुराण भी किसी यज्ञ या संस्कार, विवाहादि के अवसर पर सभी तरह के अशुभ या अनिष्टकारी विघ्न का नाश करने के लिए 'भूमिशोभा' द्वारा पृथ्वी की आराधना और सज्जा करने का निरूपण करता है। चंडेश्वर ने अपने 'कृत्यरत्नाकर' में अरिपन हेतु 'भूमिशोभा' और 'मंडल' दोनों नामों का प्रयोग किया, जबकि रुद्रधर कुलदेवता की स्थापना और पूजा-विधि का वर्णन करते हुए, आलेपन और मंडल लिखने का निर्देश करते हैं। श्रीहर्ष ने भी अपने 'नैषधीय चरित' में अरिपन को आलेपन कह कर परिभाषित किया है। इसकी टीका में नारायण ने अरिपन का उल्लेख करते हुए ''आलेपनम् पिष्टोदकम् (पिठार) अईपन इति लोके प्रसिद्धम्'' कहा है। मिथिला के महान कवि विद्यापति के गीतों में अरिपन को 'अलिपन' कहा गया है।

मिथिला के अरिपन अब मात्र घर-आँगन या उसकी वीथियों तक ही सीमित नहीं हैं बल्कि विश्वकला के रूप में मान्यता प्राप्त कर चुके हैं। 'अरिपन' शब्द का विकास आलेपन, अलिपन अथवा आलिंपन से हुआ है। आलेपन को चौंसठ कलाओं के मध्य एक कला माना गया है जिसे आधुनिक समय में हम चित्रकला अथवा लोककला कोटि में रखते हैं। प्राचीन साहित्यों में जिस सर्वतोभद्र, स्वस्तिक, षोडसदल, अष्टदल आदि के उल्लेख हुए हैं, वे सभी इसी के प्रभेद हैं।

मंडल, अर्थात एक गोला या वृत्त, प्रतीकरूप में अंतरिक्षीय शक्ति की अखंडता का मानसदर्शन कराता है। चाहे पृथ्वी पर, भित्ति पर, कागज पर, कपड़ा पर आरेखित किया जाए या किसी धातु पर अंकित किया जाए, रहस्यमय शक्तियों का प्रतीक, मंडल या अरिपन संकेंद्रित, अवाचिक अर्थ को बतानेवाला मनुष्य का प्राचीनतम प्रयास था। मंडल का जन्म मनुष्य के ब्रह्मांड से संबंधित अवबोधन और जन्म, मृत्यु, अस्तित्व की अतिसूक्ष्म जादूई प्रक्रिया से हुआ, जिसे मात्र ज्यामिति और गणितीय रूप के अमूर्तन के माध्यम से समझाया या उद्‌घाटित किया जा सकता था।

प्राचीन धार्मिक साहित्य और कर्मकांड-संहिताओं में सर्वतोभद्र और स्वस्तिक मंडल के संबंध में प्रमुखता से उल्लेख हुए हैं। सर्वतोभद्र कुमारी देवी और उदीयमान सूर्य का सर्वोच्च प्रतीक है। इन दोनों सर्वोच्च शक्तिरूपों की अभिव्यक्ति सभी तरह के मंडल और व्रत-चित्रलिपियों के अंगभूत हैं। देवी चक्ररूपा है, वृत्त के रूप में, और मंडल शब्द ही सूर्य का समानार्थी है, जीवनदायी खगोलीय गोला। सर्वतोभद्र और स्वस्तिक मंडलों को वैदिक मंडल के अंतर्गत रखा गया है। व्यवहारतः, कौलाधारित मंडल के रूप में परिगणित होने के कारण मिथिला अरिपनों के अंतर्गत सर्वतोभद्र अरिपन का प्रयोग तो नहीं होता है किंतु स्वस्तिक मंडल का प्रयोग यंत्र रूप में मिथिला में अद्यतन प्रचलित है।

भारतीय वाङ्मय, अध्यात्म, लोककला, तंत्र और साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में 'योगिनी' एक प्रख्यात शब्द है। अधिकांश साधक और ज्ञानी मातृका, देवी, शक्ति और योगिनी में किसी प्रकार का अंतर किए बिना विभिन्न क्रियारूप की संज्ञा मात्र मानते हैं। कौलमार्ग के उपासक योगिनी को विशिष्ट देवी और कौलमार्ग की संरक्षिका मानते हैं। कुलार्णव तंत्र योगिनियों के तीन रूप मानता है संरक्षिका, साधिका और भोगयक्षिणी। मत्तोत्तर तंत्र योगिनी को विश्व के सृजन और ध्वंश करानेवाली शक्ति मानता है। कौलज्ञाननिर्णय के मतानुसार, अंतरिक्ष (द्युलोक) में वास करनेवाली देवी जब पृथ्वी पर आती है तब अनेक प्रकार के रूप धारण कर योगिनी बन जाती है। कहा गया है कि योगिनी और भैरव जल पर भी वास करते हैं। मिथिला में योगिनियों के अनेक रूप प्रचलित हैं। कोबरघर की योगिनी, 'नयना योगिनि' अरिपन-तंत्र की एक महत्वपूर्ण संरक्षिका योगिनी है।

मिथिला के अरिपन जटिल तंत्र का सरल लोकानुवाद है, किंतु यह विषय जितना ही गूढ़ है, उतना ही व्यापक भी। यद्यपि कि तंत्र का मूलभाव सदैव अपरिवर्तनीय है, यह विश्वास कि संपूर्ण वैश्विक सत्ता आद्याशक्ति के अधीन है, और उसी शक्ति की अनुकूलता पाने के लिए सामाजिक जीवन में व्रत-पूजा-उपासना के नियम परंपरागत रूप से निर्धारित किए गए हैं। ये सभी नियम तंत्राधारित हैं। यंत्र को देवता का शरीर कहा गया है और मंत्र को देवता की आत्मा। यंत्र या अरिपन के निर्माण में बिंदु, रेखा, त्रिकोण, चौकोण, षट्कोण, अष्टकोण, वृत्त, अर्धवृत्त, क्रॉस आदि अनेकों ज्यामितिक चिन्हों का प्रयोग होता है। ये सभी चिन्ह वस्तुतः तंत्र की प्रतीकात्मक भाषा हैं जिनमें सभी संप्रदायों के, सभी समुदायों की साधना के गूढ़ रहस्य निहित होते हैं। इसीलिए तंत्र को हिंदू-धर्म की समस्त साधना की कुंजी कहा गया है। तंत्र मात्र शक्ति-उपासना का प्रधान अवलंब नहीं है, यह समस्त साधना का एकमात्र आश्रय है। इसमें स्थूलतम साधना-प्रणाली से ले कर अति गुह्य मंत्र-शास्त्र

और गुह्यतर योग-साधनादिक समस्त क्रिया-कौशल का सविस्तार वर्णन होता है। मिथिला की गुणवती स्त्रियाँ जब अरिपन-लेखन की प्रक्रिया शुरू करती हैं, तो वस्तुतः वह अपनी साधना ही कर रही होती हैं, मन ही मन उक्त अवसर के मंत्र का उच्चारण और आंतरिक रूप से अरिपन के देवता का स्मरण।

अरिपन के प्रकार

परंपरा की दृष्टि से अरिपन दो प्रकार के होते हैं वैवाहिक और धार्मिक। आगे की पंक्तियों में हम पहले वैवाहिक अरिपनों का अध्ययन करेंगे, फिर ऐसे अरिपनों का जो व्रत-त्योहारों के अवसर पर बनाए जाते हैं।

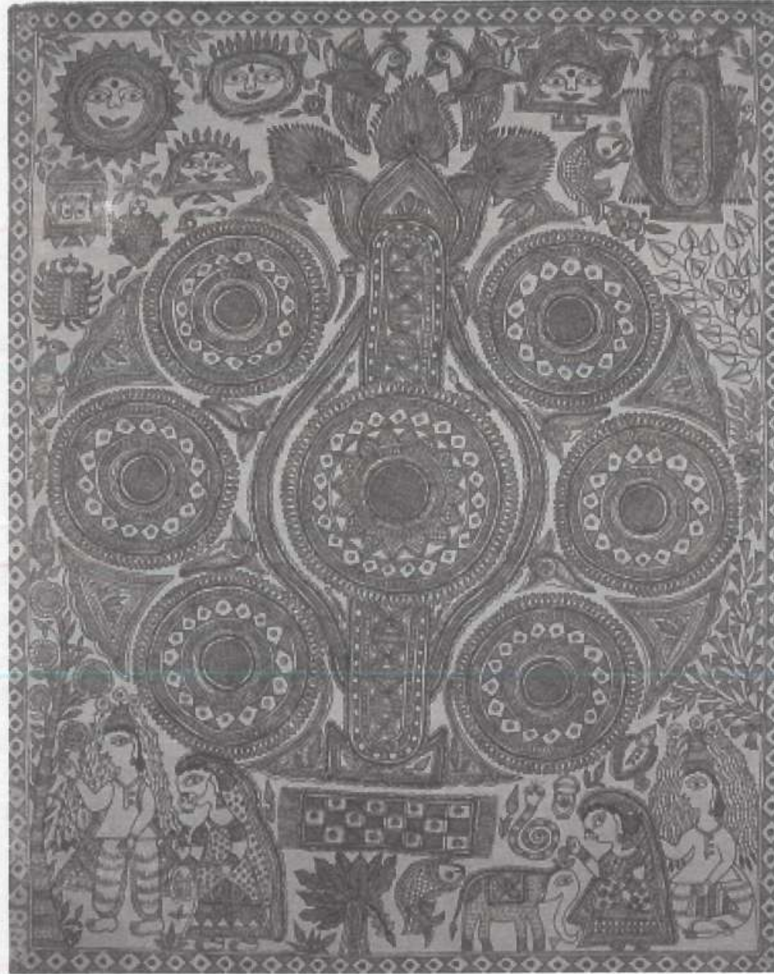
पाठ-2

वैवाहिक अरिपन कोबर

'कोबर' मिथिला चित्र और मैथिल सामाजिक जीवन में अत्यंत महत्वपूर्ण शब्द है। 'कोबर' उस कक्ष-विशेष को कहा जाता है जहाँ विवाह (सिंदूरदान) के बाद वर-बधू निवास करते हैं। दूसरी ओर, 'कोबर' उस महत्वपूर्ण चित्र को कहा जाता है जो मैथिल समुदायों के विवाह में मंदिर जैसा पवित्र और वैवाहिक कर्मकांड का अत्यावश्यक भाग होता है। कोबर को मिथिला चित्र-परंपरा में 'तंत्रराज' कहा गया है।

'कोबर' का शाब्दिक अर्थ है 'कुबेर द्वारा बनवाया गया श्रेष्ठ प्रासाद या भवन' (क=जल, वर=श्रेष्ठ); जल में निर्मित श्रेष्ठ भवन। दंतकथा है कि विष्णु से पहले लक्ष्मी कुबेर की पत्नी थी। रावण का वैमात्रेय भाई कुबेर दानव-कुल का एक अति महत्वपूर्ण व्यक्तित्व था। वह अकूत धन-संपत्ति का स्वामी और शिव का मित्र था। प्रयोजन होने पर देवगण भी कुबेर से ऋण लेते थे। प्रायः इसी कारण से कुबेर को देवताओं का कोषाध्यक्ष कहा जाता है। किंतु वह कुरूप था। ऐश्वर्य और विलास के प्रतिनिधि देवता कुबेर को धन के अतिरिक्त बल का प्रतीक भी माना गया है। कलाकृतियों में उसे शंख और पद्‌म से युक्त और एक हाथ में धन का बटुआ लिए दिखलाया गया है। अनेकों गुण, प्रभुत्व और अथाह संपदा रहते हुए भी वह महाकुरूप था। समुद्र-मंथन से जब लक्ष्मी का प्रादुर्भाव हुआ तब देवताओं ने मंथन की प्रक्रिया में लगे अथाह धन का प्रबंध करने के फलस्वरूप उस पर कुबेर को अधिकार दिया। संसार की सर्वश्रेष्ठ सुंदरी लक्ष्मी जी से कुबेर ने विवाह कर लिया। लक्ष्मी उस बेमेल विवाह से बहुत दुःखी थी। वह रूठ गयी। लक्ष्मी ने खाना, पीना, हँसना, बोलना सब कुछ का परित्याग कर दिया। लक्ष्मी को मनाने के

लिए कुबेर ने संसार के सबसे विलक्षण भवन बनवाने का संकल्प किया कोबर! चौदह लोकों में विस्तीर्ण प्रासाद का क्षेत्र! समस्त प्राकृतिक अवयव, समस्त नक्षत्र-मंडल, समस्त जीवादि सहित भवन के मध्य में मणि-पर्वत, उसके शीर्ष पर सहस्रदल कमल, उस पर सुखासन, सुखासन पर मणिपद्‌म और उस पर विराजित शक्ति सहित शिव! और भी बहुत कुछ; अंततः लक्ष्मी मान गयी। लौकिक व्यवहार में कोबर को 'योग-योगिनी' या शिव-पार्वती का निवास कहा गया है।



कोबर अरिपन



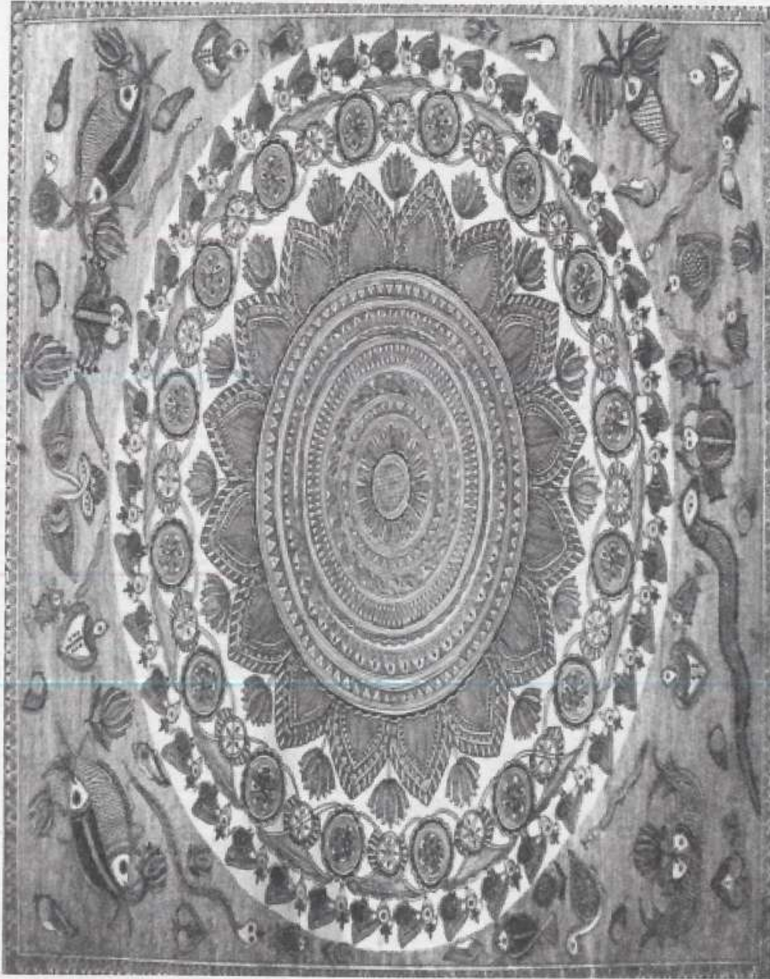
अभ्यास के लिए 'कोबर' का सरल रूप

पाठ-3

कमलदह अरिपन

कहा जाता है कि पृथ्वी पर जितना जल है उसे यदि एक जगह जमा कर दिया जाए तो उस जलराशि से पृथ्वी का दो तिहाई भाग ढँक जाएगा। कल्पना कीजिए कि यह भूमंडल

इतनी जलराशि से भरा एक सरोवर है, समस्त जल-जंतुओं और कमल पुष्प से भरा हुआ। मिथिला चित्र-परंपरा में ऐसे ही सरोवर को 'कमलदह' कहा गया है। कमलदह की अधीश्वरी देवता कमला अर्थात लक्ष्मी है, दशमहाविद्या की दसवीं या अंतिम महाविद्या। तंत्रविद्या के अनुसार, दशमहाविद्या की तीसरी शक्ति, सुंदरी या त्रिपुरसुंदरी के पति शिव हैं, प्रेम के मांगलिक देवता, जबकि कमला के पति विष्णु हैं, सर्वव्यापी सृष्टि के संरक्षक। उसी प्रकार, सृष्टि की सभी वस्तुओं में अंतर्भूत चेतना, सभी पदार्थ या



कमलदह अरिपन

रूप में अंतर्यामी सौंदर्य त्रिपुर सुंदरी है और उस चेतना का प्रकटीकरण, उसकी महिमा का उद्घाटित सौंदर्य, उत्कृष्ट मनोहरता की अभिव्यक्ति कमला है।

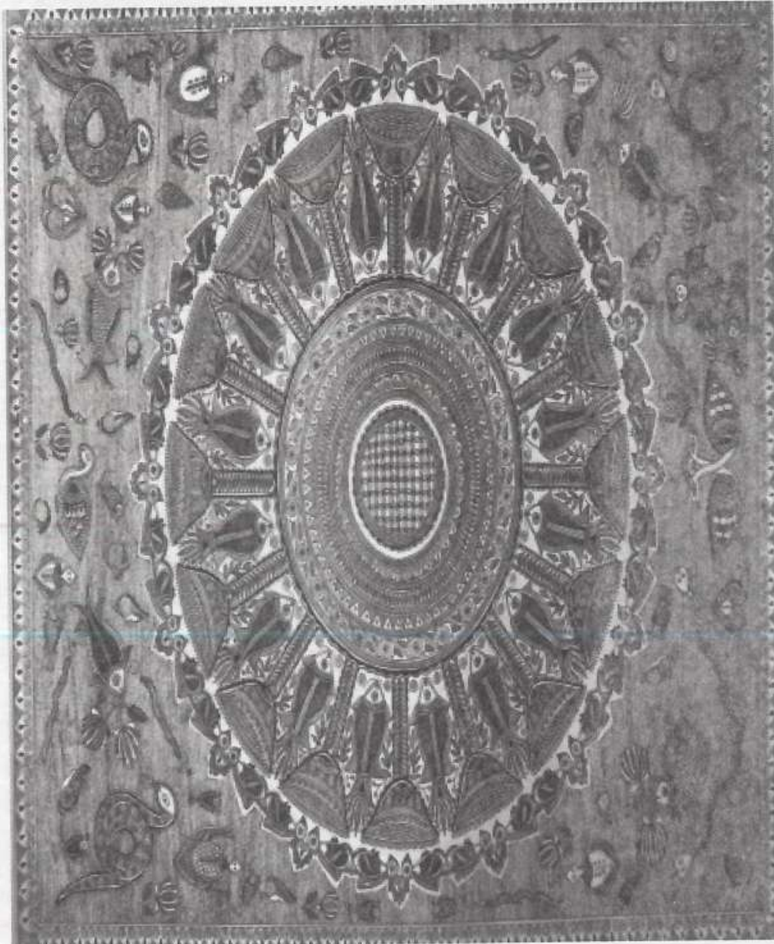
यहाँ यह जानना उचित होगा कि मिथिला के कर्ण-कायस्थ समुदाय में जब कोई वर विवाह के लिए जाता है तो बधू के सीमांत में भरने वाला सिंदूर परंपरागत विधि से बनाए गए कागज के छह पुड़ियों में तैयार किया जाता है। बड़े साइज के इन कागजों में दो कोबर और एक-एक कमलदह, बर्रे, बाँस और विष्णु का दशावतार चित्रित रहता है। इन विशिष्ट अरिपनों से चित्रित कागज में लपेटे सिंदूर का उपयोग तो विभिन्न विधियों के अंतर्गत होता है और शेष बचे सिंदूर को बधू सम्हाल कर आगे के उपयोग के लिए रख लेती है, किंतु कागज पर चित्रित अरिपनों को भी सम्हाल कर रखा जाता है। वस्तुतः ये चित्र नवबधू के लिए प्रशिक्षण-निर्देश की तरह होता है। अरिपनों के मूल स्वरूप को कुल-भेद के कारण आने वाली भिन्नता से बचाने के लिए कला-प्रशिक्षण की यह विधि परंपरागत रूप से आज भी चालू है।

कमलदह की अध्यक्षीय देवता कमला का वर्णन करते हुए पुराणों में बताया गया है कि अमृत पाने के उद्देश्य से जब क्षीर-सागर का मंथन हुआ तब यह उससे बाहर निकली, और इसीलिए इसे क्षीर सागर की पुत्री कहा जाता है, क्षीरसागर-कन्यका। प्रकट रूप में क्षीर सागर सर्व-व्यापी चेतना का प्रतीक है, अमरत्व लोक, अस्तित्वानंद की मधुमय ऊर्म्मि से स्फीत, वैदिक ऋचाओं की मधुमान ऊर्म्मिह। इसीलिए वह इंदिरा है, इंदु या चंद्रमा की बहन, सोम, अस्तित्व का आनंद, सृष्टि की सभी वस्तुओं का मौलिक परमानंद जिसका जन्म, पुराणानुसार, क्षीर-सागर से ही हुआ है। वह चेतना की क्रीड़ा है, उसका बाह्य प्रदर्शन है, जगदीश्वर की क्रीड़ा, रमा। सभी जीवादिकों के आश्रय और अवलंब के रूप में, सभी के भीतर प्रवाहित चेतना के प्रवाह के रूप में वह **श्री** है। कमलदह अरिपन का आलेखन भित्ति और कागज दोनों पर किया जाता है।

पाठ-4
बर्रे अरिपन

जिस प्रकार श्रीचक्र के केंद्रीय बिंदु में देवी त्रिपुर सुंदरी का निवास कहा गया है, जहाँ रत्नमय ज्योतिर्मय चिंतामणि-गृह में सृजन की असंख्य धारा एक स्थान पर मिलती हैं, उसी प्रकार परिपक्व कमल के अन्नमय कोश में कामेश्वर (शिव) और कामेश्वरी का विलास-कक्ष कहा गया है। सुधा-सिंधु में फैले असंख्य ऐसे ही परिपक्व कमल के वन को मिथिला-अरिपन की परंपरा में 'बर्रे' कहा गया है। अमृत का सागर, सुधा-सिंधु का महाकमल-वन, जहाँ से समस्त सृष्टि का आनंद, शिव और शक्ति के मिलन से जीवन-रस का प्रवाह संसार को आप्लावित करता है, बर्रे कहा गया है।

देवी सुंदरी परमेश्वर की इच्छा के आद्य अंश का प्रतिनिधित्व करती है, कामकला, जो प्रेम का आधार है, जीवनदायी बंध जो सर्जक और सृजित को परस्पर बाँधता है, आनंद और सौंदर्य के प्रवाह के रूप में अपने आप को व्यक्त करता है। वह आद्य चेतना है, चित्, सभी वस्तुओं के अभ्यंतर प्रवाहित होनेवाला जीवन-रस है। कामेश्वर की शक्ति-रूप में वह कामकला, कामेश्वरी, सुंदरी और सौंदर्य की अवतार है। वह सत्-चित्-आनंद, त्रिपुर लोक में व्याप्त सौंदर्य की अधिष्ठात्री शक्ति है, वह त्रिधा जगत की अन्न-प्राण-मनस् है।



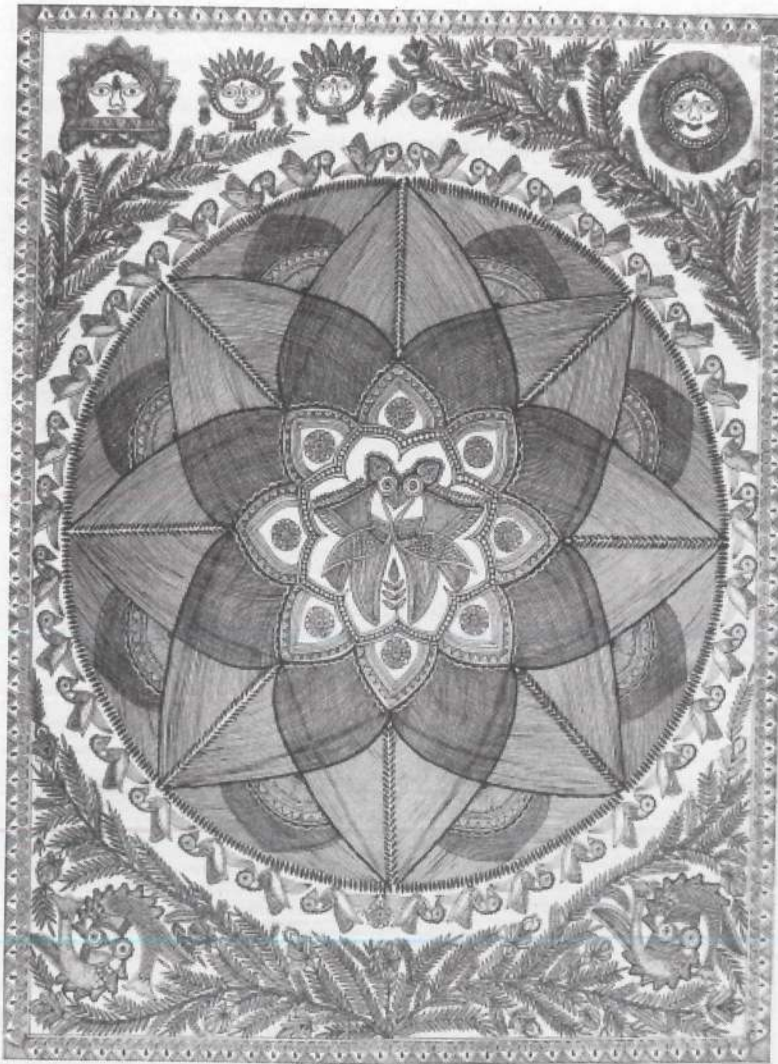
बर्रे अरिपन

तांत्रिक विद्वानों की व्याख्या में सृष्टि को आद्य इच्छा का मनोवेग या अंतःप्रेरणा कहा गया है जो एक स्पंदन के रूप में घटित होता है, एक कंपन, नाद, जो अपने आप को एक बिंदु में संकेंद्रित करता है और जिस संकेंद्रन से त्रिकोणाकार तीन बिंदु बनते हैं, योनि, जो सभी तरह के प्रकटीकरण का मूल स्रोत है। परम देवी, परम माता अपने आप को त्रिक् रूप में प्रकट करती है और त्रिपुरा या त्रिपुर सुंदरी कहलाती है। त्रिलोक की सर्वश्रेष्ठ सुंदरी है त्रिपुरसुंदरी। पुर का अर्थ नगर, स्थान या क्रिया का क्षेत्र होता है और त्रिपुर का अर्थ होता है तीन-स्तरीय क्षेत्र या त्रिधा-जगत। वैदिक ऋषियों ने निखिल ब्रह्मांड को पृथक-पृथक भुवन या संसार की श्रेणी के रूप में देखा उच्चतर त्रि-स्तर में जन, तप और सत्यलोक की व्याहृति; निम्न त्रि-स्तर में भू, भुवः और सुवः लोक की व्याहृति और उससे जुड़ा महस लोक। वह स्वर्ग, मर्त्य और पाताल के तीनों लोकों में; जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति की तीनों अवस्थाओं में; इच्छा, ज्ञान और क्रिया की तीनों शक्तियों में; समस्त त्रिक् में अंतर्भूत है। वह सभी त्रिकों से बढ़ कर श्रेष्ठ है, इसीलिए त्रिपुर सुंदरी या त्रिपुरा कही जाती है। मिथिला चित्र-परंपरा में त्रिपुर सुंदरी को 'बर्रे अरिपन' की अधिष्ठात्री देवी कहा गया है।

पाठ-5
बाँस अरिपन

मिथिला लोकचित्र के 'बाँस अरिपन' को, हरितिम बाँसों के सघन बीट को आकाश की तरह विस्तीर्ण दिखलाया जाता है। तांत्रिक दृष्टि से महाविद्या भुवनेश्वरी इस अरिपन की अध्यक्षीय देवता कही गयी है। दशमहाविद्या की चौथी महाशक्ति भुवनेश्वरी को आकाशीय अवधारणा का प्रतीक कहा गया है। जिस प्रकार परम दैवी कालात्म, काली सर्वोच्च काल-शक्ति का प्रतिनिधित्व करती है, उसी प्रकार भुवनेश्वरी परमात्म तत्व के विस्तार की आत्म-कल्पना है, सृष्टि में आकाशीय अवधारणा का प्रतीक।

तांत्रिक आचार्य ज्ञानातीत परमेश्वर की कल्पना प्रकाश-रूप में करते हैं, मूलभूत प्रकाश के रूप में। जब वह अपने आप को प्रकट करने के लिए आत्मचालित होता है तब एक तरह का परिसीमन होता है, हदबंदी, एक तरह का दृश्य प्रपंच, परिस्थिति की सृष्टि होती है और प्रकाश आकाश, अंतरिक्ष, विराट विस्तार बन जाता है; एक माध्यम जिससे प्रकाश गमन करता है और विस्तारित होता है। तांत्रिकों के अनुसार, ईश्वर जब अपने आप को प्रकट करना चाहता है तब वह तत्क्षण स्वयं अपनी ओर देखता है। उपनिषद कहते हैं, तदैक्षत, उसने देखा। ईश्वर का यही अवबोधन आकाश रूप में उसके विस्तार का कारण बनता है, नाम और आकार की एक संज्ञा बनती है और उसी समय परमेश्वर की दृष्टि से सृष्टि का प्रारंभ हो जाता है; दृष्टि से सृष्टि का यही सिद्धांत है।

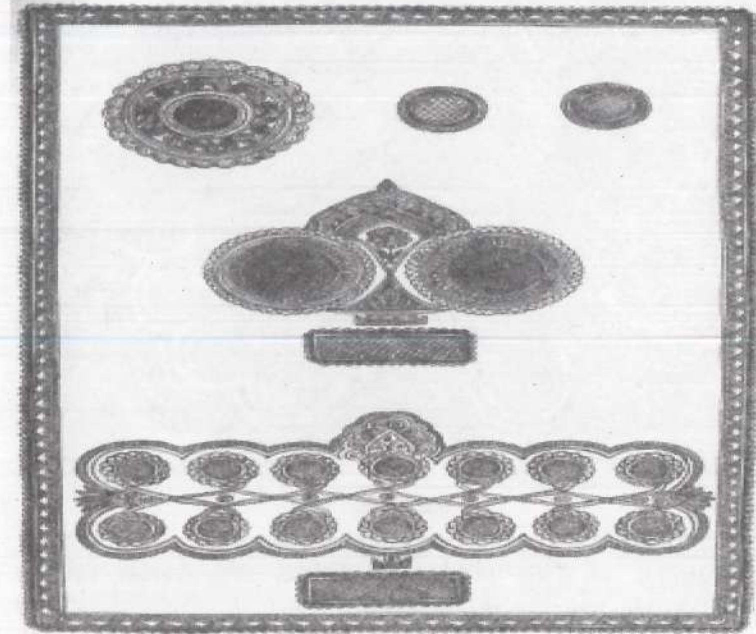

बाँस अरिपन

सृष्टि की इस भाव से कल्पना करने की शक्ति भुवनेश्वरी है। यह कल्पना-शक्ति ज्ञान-शक्ति में परिवर्तित होती है, इसलिए भुवनेश्वरी परमेश्वर की ज्ञान-शक्ति है, जिस प्रकार त्रिपुर सुंदरी परमेश्वर की इच्छा-शक्ति होती है। और अंतरिक्ष क्या है? आकाश या अंतरिक्ष कुछ और नहीं, विस्तार का प्रत्यक्ष बोध है। हम जिसे आकाश या अंतरिक्ष कहते

हैं, वह वस्तुतः विस्तार की एक सीमा है जहाँ तक हम देख सकते हैं, जहाँ तक हमारी दृष्टि की पहुँच हो सकती है। वेद में भुवनेश्वरी को अदिति का समरूप कहा गया है। पुराणों में दिति और अदिति दोनों को कश्यप ऋषि की पत्नी कहा गया है। दिति दानवों की माता थी जबकि अदिति को सभी देवताओं की माता कहा गया है। कश्यप का अर्थ होता है द्रष्टा, जो देखता है, जिसे प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त है, पश्यति इति कश्यपः। इस रूप में तांत्रिक परंपरा की भुवनेश्वरी और वेद-पुराणों में वर्णित देव-माता अदिति एक ही है। भुवनेश्वरी को प्रकृति भी कहा गया है, सृजन-कार्य में सक्रिय प्रकृति। मिथिला अरिपन-परंपरा में 'बाँस अरिपन' इसी धारणा का प्रतीक है। सामान्य अर्थ में इसे विश्व परिवार की वंश-वृद्धि का यंत्र कहा जाता है।

पाठ-6
महुअक अरिपन

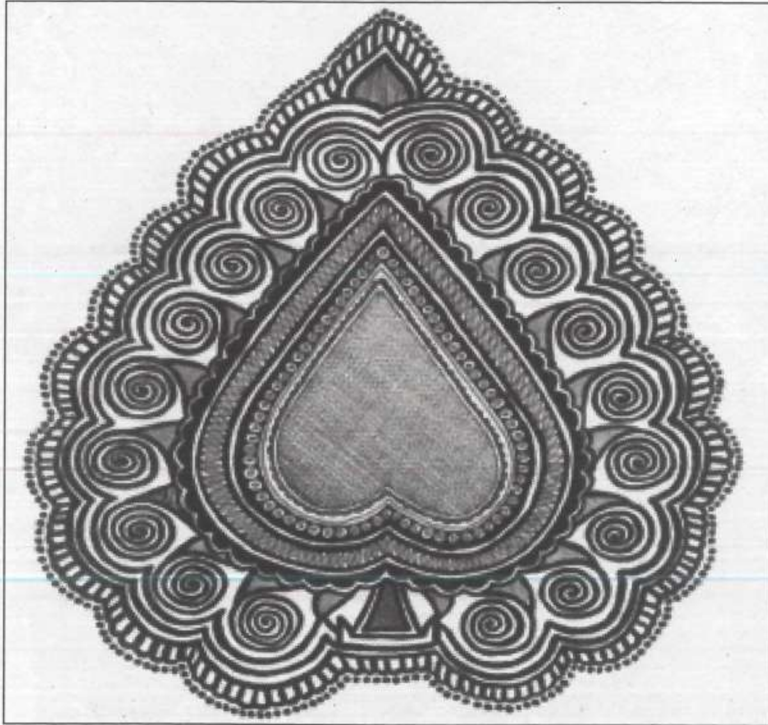
कोबरघर के भीतर आरेखित किए जानेवाले प्रमुख अरिपनों में 'महुअक अरिपन' भी है। एक विधि के अंतर्गत वर और बधू एक-दूसरे के मुख में खीर देते हैं। खीरवाली थाल एक विशिष्ट अरिपन पर रखी जाती है। यह अरिपन युग्म पुरैन से बना होता है।


महुअक अरिपन

पाठ-7

व्रत अरिपन

मिथिला में प्रायः सभी महीने में किसी न किसी व्रत का आयोजन होता है। इन व्रतों में उपवास, कथा, गीत और अरिपन-आलेखन प्रमुख तत्व होते हैं। इनमें से प्रायः सभी व्रतों की व्रती और पुजारी महिलाएँ स्वयं होती हैं। पुरैन और पान-अरिपन इन व्रत-पूजाओं में सामान्यतया अवश्य लिखे जाते हैं। पान के आकार का आरेख वस्तुतः ईष्ट देव का आसन होता है जबकि पुरैन अरिपन पर अर्घ की वस्तुएँ रखी जाती हैं। पान के पत्तों का प्रयोग प्रायः सभी तरह के धार्मिक और तांत्रिक आराधनाओं में किया जाता है। मैथिल लोक जीवन में पान स्नेह और सम्मान प्रदर्शित करनेवाला साधन है।



पान अरिपन

'मधुस्रावनी' का प्रसिद्ध पर्व दंत-कथा, पौराणिक कथा, लोकगीत, चित्रकला और मंत्रों के साथ पंद्रह दिनों तक फूल, पत्ते, धूप-दीप और नैवेद्य की परिपाटी में चलता है। मैथिल ब्राह्मण और कर्ण-कायस्थ समुदायों में किसी कन्या के विवाह के

प्रथम वर्ष, सावन मास में नाग-पंचमी से प्रारंभ यह पर्व लगभग पंद्रह दिनों का होता है जब नव-विवाहिता अपनी सखियों के साथ बहुत सवेरे से फूल और पत्ते जमा करने निकलती है, बिना अन्न-जल ग्रहण किए दिन भर गाँव भर की स्त्रियों के साथ श्रद्धा पूर्वक रामायण-महाभारत और दंत कथाओं का श्रवण करती है और अपने पति के कल्याण के लिए नागदेवी विषहारा की आराधना करती है। इस पूजा के लिए मैना के बड़े पत्ते पर एक सौ आठ नाग बनाए जाते हैं। इस अवसर पर पुरैन अरिपन, पान अरिपन, पंचदेवता, सूर्य-चंद्रमा, खटवार अरिपन बनाए जाते हैं और स्वयं व्रती नव विवाहिता अद्भुत शृंगार करवाती है जिसे 'पटमाइस' कहा जाता है।



मधुस्रावनी अरिपन

मधुस्रावनी व्रत 'नागपंचमी' के दिन से शुरू होता है जब वर्षा ऋतु के प्रारंभ में समस्त हिंदू जाति के लोग सर्प-भय से रक्षा के लिए नाग की पूजा करते हैं। नाग-पूजा के लिए कोई खास अरिपन तो नहीं बनाया जाता है, किंतु सूर्योदय से पूर्व प्रत्येक घर की अभिभावक महिला अपने घर के बाहरी दीवाल पर नाग-पाश बनाती है और कुलदेवता के आगे भी नाग बनाती है।

भाद्र मास में 'चतुर्थी चंद्र-पूजन' या 'चौरचन' व्रत का आयोजन होता है। इस दिन आँगन में विस्तृत पान-अरिपन, पंचदेवता सहित चंद्र-यंत्र और अर्घो की संख्या के अनुसार पुरैन अरिपन बना कर संध्या काल चंद्रमा की पूजा की जाती है।

'पान-पुरैन' अरिपन का आलेखन विविध प्रकार के धार्मिक और सांस्कृतिक



चौरचन अरिपन

कार्य के लिए किया जाता है। इसका आलेखन मुख्यतया भूमि पर किया जाता है। दीपावली के दो दिन बाद 'भातृद्वितिया' का पर्व होता है जब भाई अपनी बहन के घर जाकर उसका न्योता लेती है, जैसे सूर्य का पुत्र यम ने अपनी बहन का न्योता लिया था। इस व्रत के माध्यम से बहन अपने भाई के दीर्घायु होने की कामना करती है।

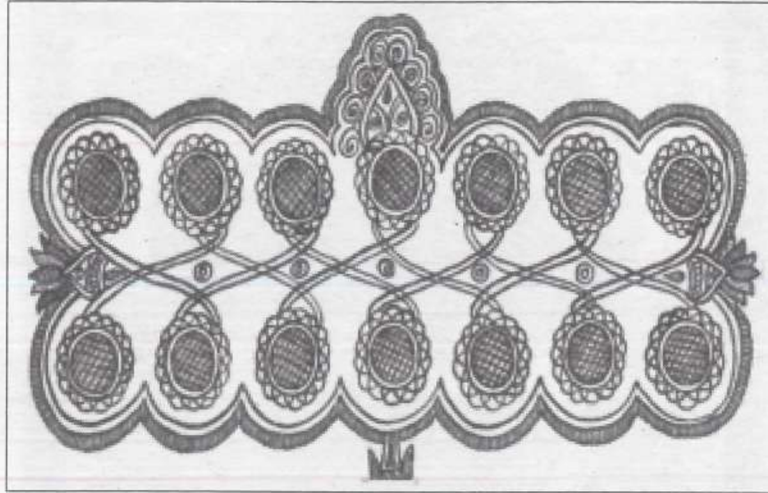
आश्विन मास में 'गवहा (गाभा) संक्रांति पर्व' का आयोजन होता है। यह



पान-पुरैन अरिपन/भातृद्वितिया अरिपन

पृथ्वी, गौ और विश्व-कल्याण के लिए सृष्टि के पालक विष्णु की आराधना का पर्व है। इस दिन कुमारी कन्या प्रातह काल चौदह पुरैन अरिपन बना कर उस पर गाय के गोबर की चौदह चिपड़ी पाथती है और उन चिपड़ियों पर चावल का श्वेत पिठार, कुम्हर के फूल, और सिंदूर लगाती है। गोबर की ये चौदह चिपड़ियाँ 'चौदह भुवन' के प्रतीक हैं। इसके बाद, संध्या से पूर्व, परिवार की गुणी महिला आँगन में विस्तृत 'अष्टदल' अरिपन बनाती हैं। जिस परिवार में कोई स्त्री गर्भवती रहती है, उसके आँगन में 'अष्टदल' के स्थान पर 'ककबा' अरिपन बनाया जाता है।

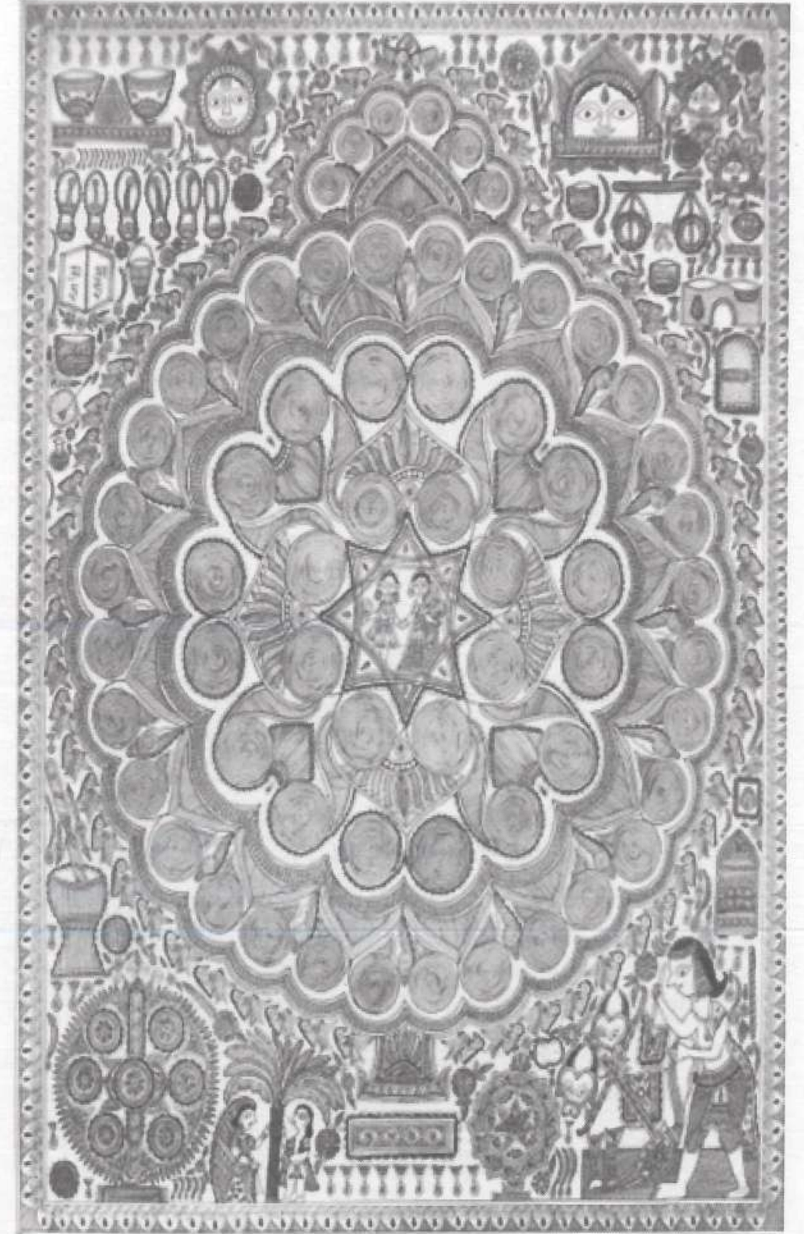
व्रत-अरिपनों में सर्वाधिक विविधतावाले अरिपन 'अष्टदल' या विष्णु-अरिपन



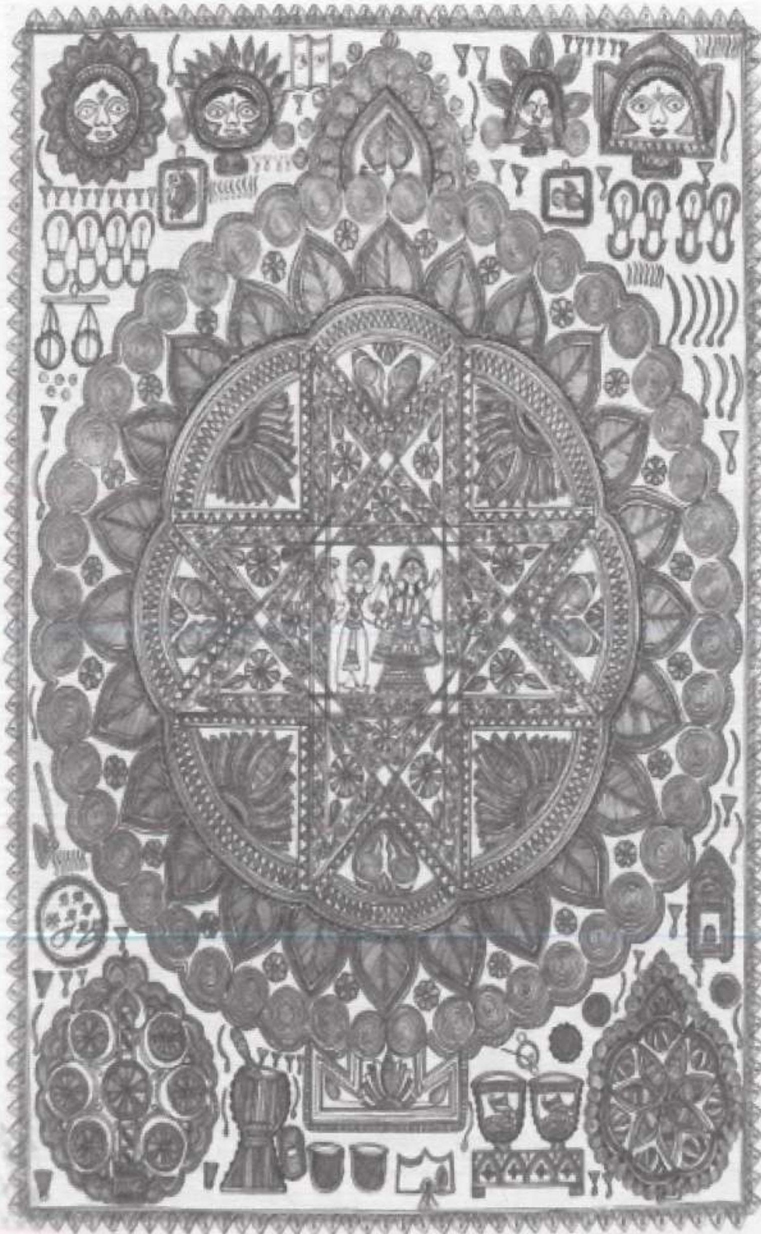
गाभा-संक्रांति अरिपन

हैं। मिथिला में भूमि पर बननेवाले अरिपनों में यह सबसे अधिक विस्तृत होता है। दीपावली के छह दिन बाद छठ का महापर्व और छठ के चार दिन बाद देवोत्थान एकादशी का पर्व होता है। पौराणिक परंपरानुसार, वर्षा के प्रारंभ में, जुलाई माह में 'हरिशयनी एकादशी' के दिन सभी देवता (विशेष रूप से लक्ष्मी-नारायण) चिरनिद्रा में चले जाते हैं और नवंबर माह में देवोत्थान एकादशी के दिन जगते हैं जब लक्ष्मी अपने पति के साथ मिथिला (मायके) आती है। इन्हीं के स्वागत में देवोत्थान अरिपन का आलेखन होता है, उनके निवास-कक्ष के रूप में। रूपों की विविधता दर्शाने के लिए इसके दो रूप यहाँ दिए जा रहे हैं।

'दुर्गा पूजा' दस दिनों तक चलनेवाला व्रत, पूजा-पाठ और गीत-नाद का त्योहार



अष्टदल अथवा देवोत्थान अरिपन (1)



अष्टदल अथवा देवोत्थान अरिपन (2)

है जो आश्विन मास में आयोजित होता है। इस अवसर पर मिथिला की गृहस्थ महिलाएँ कलश-स्थापन के दिन अपने निवास-कक्ष के द्वार पर पंचदेवता और दुर्गा के चित्र बनाती हैं।

'कोजागरा' सुख-रात्रि का विलास-पर्व है। नव-विवाहित वर इस दिन अपने ससुराल से अनेक प्रकार के उपहार के साथ विदा किए जाते हैं। इस दिन संध्या काल भूमि पर 'चुमान अरिपन' (पान-अरिपन) बनाया जाता है और रात में लोग पान, मखान, मधुर खाते हैं।

'दीया-बाती' या 'दीपावली' का व्रत कार्तिक मास में होता है। इस दिन लक्ष्मी



राशि या भतराशि अरिपन

जी की आराधना में विस्तृत 'अष्टदल' और पनमा अरिपन का आलेखन किया जाता है।

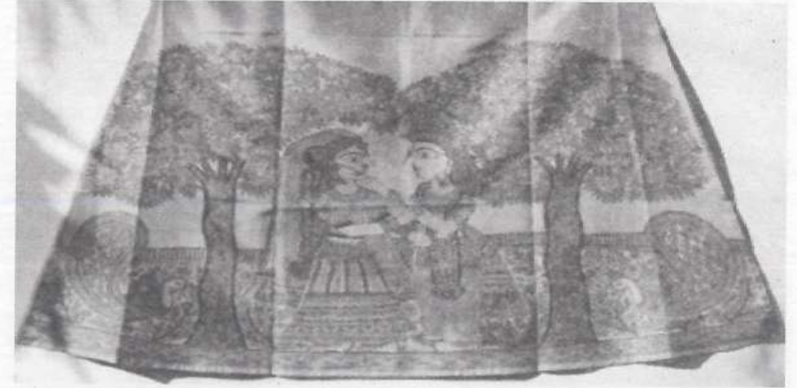
'तिला संक्रांति' (मकर संक्रांति) का पर्व जहाँ एक ओर सामान्य हिंदू परिवारों के लिए नये अन्न के पकवानों का पवित्र धार्मिक पर्व होता है वहीं नव विवाहित स्त्रियों के लिए यह निस्तार का पर्व होता है। पौष मास में आयोजित होनेवाले इस पर्व में व्रती स्त्रियों द्वारा पूजन के लिए 'खट्वार' (छह द्वारोंवाला यंत्र) का आरेखन किया जाता है जिसके भीतरी भाग में पुरैन, पान अरिपन, पंचदेवता और अठाइस कोष्ठकोंवाला विशिष्ट अरिपन 'राशि' बनाया जाता है। इस अरिपन को 'भतराइस अरिपन' भी कहते हैं। आरेखन में अंकित अठाइस कोष्ठक स्त्रियों के अठाइस दिनों के रजमास का द्योतक है।

'सपता-विपता' कथा सुनने के साथ व्रत है जो होली के प्रात होता है। व्रती स्त्री पूजा-स्थल पर सूर्य, (पंचदेवता), पुरैन और पान-अरिपन बना कर अपने हाथों में हरे दूब रख कर कथा सुनती हैं।

'जूड़-शीतल' का पर्व होली के एक मास बाद, बैसाख मास में होता है। इस दिन व्रती स्त्रियाँ पनमा अरिपन और पंचदेवता का आलेखन करती हैं।

'बरिसाइत' का व्रत मैथिल स्त्रियों के दीर्घ दांपत्य जीवन का प्रमुख व्रत है। ज्येष्ठ मास के इस व्रत में सधवा स्त्रियाँ बरगद (वर) वृक्ष की छाया में पान अरिपन, पुरैन और पंचदेवता के आलेखन के अतिरिक्त नव विवाहिता अपने माथे पर सिंदूर से सज्जा (पटमाइस) करवाती हैं, मिथिला की परंपरागत कला 'कनिञा-पुतरा' (कपड़े से बनी गुड्डा-गुड़िया) बनाती हैं और मृणपात्रों को चित्र से सज्जित कर लोगों में बाँटा जाता है।

भाग-4



पाठ-1

मिथिला वस्त्र-चित्रांकन

मिथिला लोकचित्र के अंतर्गत वस्त्र-चित्रांकन के संबंध में अध्ययन वस्तुतह किसी परंपरागत चित्रशैली में विकास की अवधारणा का अध्ययन है, और इसीलिए विकास के इस घटनाक्रम का उल्लेख सबों के लिए उपयोगी हो सकता है; चाहे वह शिल्प से जुड़ा व्यक्ति हो अथवा सामाजिक विकास के प्रबंधन से। हस्त-निर्मित मोटे कागज पर बननेवाले रंगीन चित्रों के समानांतर, बल्कि अधिक व्यापक क्षेत्र की महिलाओं द्वारा जिस विधा में आरेखन किया जाता है, वह 'मिथिला वस्त्र-चित्रांकन' है। चित्रकला की यह प्रवृति परंपरागत नहीं बल्कि अधुनातन है। संस्थागत संगठित रूप में इस चित्र-विधि का प्रवर्तन इस लेखक और श्रीमती शिवा कंश्यप के द्वारा, लहेरिया सराय (दरभंगा) से सटे एक गाँव, बरहेता में, सन् 1980 में हुआ।



लोककलाओं की अपनी एक खास विशेषता होती है, तकनीकी विकास के साथ अपने मूल स्वरूप को दुहराते रहने की। यदि सावधानी पूर्वक कला की मूल आत्मा को अक्षुण्ण रखते हुए उसके प्रयोग की भूमिका में विस्तार किया जाए तो उसकी उपयोगिता बढ जाती है। सन् 1934 से पूर्व, मिथिला के कर्ण-कायस्थ समुदाय में विवाह के लिए वर अपने साथ दुल्हन के 'घोघट बिध' (घूँघट की विधि) के लिए जो साड़ी ले जाता था, उसके आँचल पर लाल रंग से 'कोबर अरिपन' अथवा 'कमलदह अरिपन' चित्रित रहता था। 14 जनवरी, 1934 के दिन इतिहास का क्रूरतम भूकंप आया। वह महाप्रलय जैसा था। उस भूकंप ने पूरे उत्तर बिहार को मिट्टी में मिला दिया। उन दिनों लोगों के घर कच्ची मिट्टी की दीवारों से बने होते थे। अकल्पनीय उस भूकंप ने सब कुछ लील लिया। घर के दीवारों पर और लोक-संग्रह में शिल्प-कला का जो भंडार संरक्षित था, वह सब नष्ट हो गया। लंबे समय तक लोग दर-ब-दर भटकते रहे। भूकंप ने केवल घर और भूमि के स्वरूप को ही नष्ट नहीं किया था, इसने सामाजिक-सांस्कृतिक ताना-बाना को भी छिन्न-भिन्न कर दिया। तबाही के लंबे अंतराल के बाद लोगों का जीवन जब फिर से सामान्य भी हुआ तो बहुत कुछ गँवा कर। कला पर आधारित कई प्रकार की लौकिक विधि स्मृति-शेष हो गयी। जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया गया है, मिथिला चित्रकला का मूल स्रोत लौकिक परंपरा रहा है। इसी सिद्धांत को यह लेखक चित्रकला के अंतर्गत वस्त्र-चित्रांकन के नवाचार के लिए भी प्रयोग में लाया।

एक प्रश्न जो लोगों की ओर से बराबर सुनने में आता है, वह यह कि 'मधुबनी पेंटिंग' और 'मिथिला पेंटिंग' में अंतर क्या है? प्रश्न सुनने में तो सरल लगता है, किंतु इसका उत्तर मिथिला की चित्रकला के विकास की पूरी प्रक्रिया का रहस्योद्घाटन करता है। सन् 1970 में जब इस परंपरागत चित्रकला को लोकचित्र की मान्यता मिली और देश-विदेश के कला-बाजारों तक इसके व्यापारिक अभ्युदय का द्वार खुला, उस प्रारंभिक काल से, बल्कि उससे भी पहले से, इस कला को योजना रूप में ढालनेवाले विशेषज्ञ एक भ्रांति के शिकार थे। उन्हें लगता था कि यह कला मधुबनी से सटे कुछ गाँवों तक ही सीमित थी, और इसीलिए इसका नामकरण 'मधुबनी पेंटिंग' हो गया। भारत सरकार के संबंधित विभागों की अदूरदर्शिता के कारण पूरी मिथिला की सांस्कृतिक निधि, गलत संबोधन के कारण, एक सीमित क्षेत्र का परिचायक बन गयी। इस धारणा से शेष मिथिला और कमोवेश बिहार का बड़ा नुकसान हुआ। कला के व्यापार से उपजे आर्थिक उत्थान की आशा का प्रकाश, कि अब बिहार के दिन बहुरेंगे, शीघ्र ही धूमिल पड़ने लगे। बिडंबना यह कि खास मधुबनी के भी सभी समुदायों को उस औद्योगिक उत्कर्ष से



जोड़ने का प्रयास नहीं किया गया। काफी लंबे समय तक चित्रकला का व्यापार मात्र दो उच्च जाति की महिलाओं से जुड़ा रहा, जिनके घरों में उन चित्रों का पारंपरिक उपयोग होता था। यह लेखक उन्हीं दिनों अपने वैवाहिक संबंध के कारण उस गाँव, जितवारपुर से जुड़ा, जहाँ से इस व्यापार का श्रीगणेश हुआ था। यह लेखक अपने शैशव काल से ही, लोकचित्र के प्रतीकों से, वंचित समुदाय के बच्चों को साक्षर करने में जुटा हुआ था। आगे चल कर उसे अनुभव हुआ कि भूखे पेट कोई आदमी पढ़ाई नहीं कर सकता है। वह ऐसे किसी उपाय की खोज में था

जिससे **'पढ़ाई के साथ कमाई'** संभव हो सके। मधुबनी में सिमटे चित्रकला के बाजार की हालात देख कर उसे उपाय मिल गया। उसने अपनी पत्नी श्रीमती शिवा के साथ मिल कर चित्रकला में शिक्षण-सामग्री और डिजाइन का विकास करके उसे बहुआयामी उपयोग का साधन बनाने का निश्चय किया ताकि पूरे बिहार की स्त्रियों को कलम से जुड़ा रोजगार उपलब्ध कराया जा सके।

लोकचित्र को इस योग्य बनाने के लिए और शैलीगत सर्वांगीण विकास के लिए इसमें डिजाइन, तकनीक, शिक्षण-सामग्री, व्यापक प्रशिक्षण, उपयोगितावाद, बाजार, श्रम-सिद्धांत और विस्तार के मद में ठोस योजना पर एक साथ काम शुरू हुआ। अंततः 1980 आते-आते सभी तैयारियाँ पूरी हो गयीं। पौराणिक आवरण में लिपटा लोकचित्र अब बदलते समय के साथ कदम मिला कर चलने को तैयार था। उसकी यात्रा का परिपथ भी अब काफी विस्तृत हो चुका था। लोकचित्र का यही सर्वहितकारी, सर्वव्यापी स्वरूप 'मिथिला चित्रकला' संबोधन से अभिहित हुआ, जिसकी वह अभिलषित थी।

जे.पी. आंदोलन में सक्रिय रहते हुए, जय प्रकाश जी की 'संपूर्ण क्रांति' के तहत उनकी सामाजिक, शैक्षणिक और सांस्कृतिक परिवर्तन की अवधारणा को यह लेखक जिस रूप में समझ सका, उसके आधार पर बरहेता (दरभंगा) में, कार्यशाला-पद्धति में, एक कला-विद्यालय नवंबर, 1981 से कार्य करने लगा। अनेक सामाजिक प्रतिरोधों के बावजूद समाज की तमाम दबी-कुचली, उपेक्षित और गरीब, दलित, महादलित, मुस्लिम, पिछड़ी और सवर्ण महिलाएँ एक साथ कुछ सीखने और स्वयं अपनी हालात बदलने के लिए इकट्ठी हुईं। यह विद्यालय अद्यतन सभी जाति-धर्म और आयुवर्ग की स्त्रियों के लिए आरक्षित और पूर्णतः निःशुल्क है। शुरू से ही, इस विद्यालय में, शिक्षण-सामग्री के रूप में दो तरह की पुस्तकें प्रयोग में आती हैं निरक्षर छात्राओं की साक्षरता के लिए चित्रविधि से अक्षर और आगे की पढ़ाई, दूसरी ओर चित्रकला सीखने की सरलतम विधि के लिए विकसित पुस्तकें। कला-पुस्तकों की पाठ-योजना इस प्रकार तैयार की गयी हैं कि छात्रा सीखने के क्रम में ही निर्धारित सामग्री का उत्पादन भी कर सकें, छोटी से बड़ी वस्तु तक। इस क्रम में छात्रा जितने डिजाइनों का सही ढंग से अभ्यास करती जाती है, उसे उसी तरह के सामान बनाने में लगा दिया जाता है। इस विधि में उत्पादन को ही वर्ग माना जाता है। उदाहरण के लिए, पहले छोटे टेबुल मैट, इसके बाद कुशन कवर, फिर दुपट्टे, जैकेट, कुर्त्ते और अंत में साड़ियों पर चित्रांकन का क्रम बनता है। यहाँ तक आते-आते छात्रा अपने काम में इतना कुशल हो जाती है कि परंपरागत और आधुनिक विषय पर मिथिला चित्र बनाने लगती है।

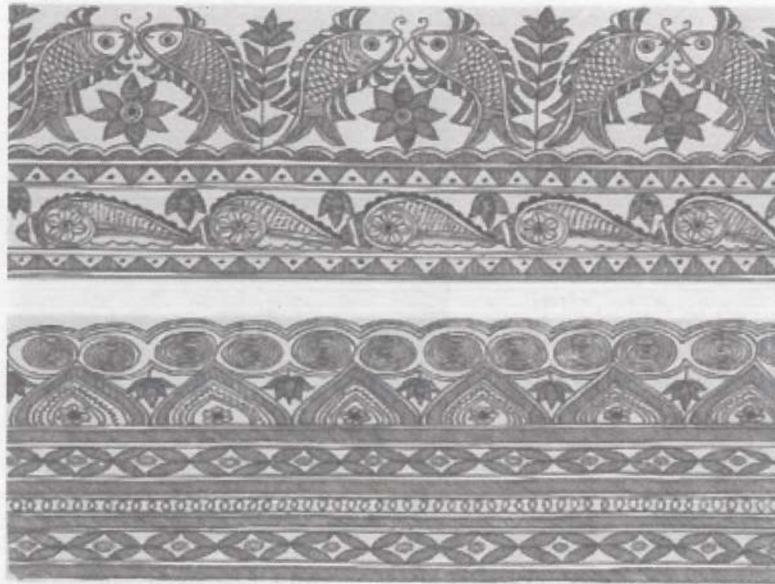
मिथिला चित्रकला के अंतर्गत 'वस्त्र-चित्रांकन' एक सोपान की तरह है जो



क्रमिक रूप से शिखर तक जाता है। तथाकथित 'मधुबनी पेंटिंग' के विपरीत इसके शिल्पी पारंपरिक प्रयोजन से नहीं बल्कि सुविचारित योजना के अधीन तैयार हुई हैं जिसका उद्देश्य सामाजिक परिवर्तन, निरक्षरता और गरीबी के एक साथ उन्मूलन और स्त्रियों का सशक्तिकरण रहा है। यहाँ उल्लेखनीय है कि मधुबनी पेंटिंग के प्रचार, बाजार और संरक्षण में भारत सरकार और विदेशी शक्तियाँ लगी थीं किंतु चित्रकला के इस नवाचार को किसी देशी-विदेशी शक्ति का समर्थन प्राप्त नहीं था। शुरुआती कुछ वर्ष तो भीषण संकट के दिन थे। सबसे बड़ा संकट सामाजिक मोर्चे पर था। वर्ण- व्यवस्था और पुरुष-प्रधान व्यवस्था के समर्थकों के लिए यह असह्य था कि सभी जाति की स्त्रियाँ एक साथ मिल-बैठ कर कलम के माध्यम से परिवर्तन का इतिहास रचें। उन्हें लगता था कि स्त्रियों को कमाई में लगाने से पारिवारिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाएगी। उनकी ओर से उत्तेजनात्मक प्रतिरोध होने लगे, किंतु ऐसी विकट घड़ी में इस लेखक को जे.पी. आंदोलन से सीखे धैर्य ने बहुत सहारा दिया और उत्तेजना से बचाया। दूसरा संकट सहयोगी का अभाव था। सन् 1984 आते-आते सहयोगी का अभाव दूर होने लगा जब छात्राओं के समूह से शशिबाला (यह लेखिका) और अनीता दास आगे आईं।

मिथिला चित्रकला में चित्र की रचना एक 'कोर' या बॉर्डर के भीतर की जाती है। समाजशास्त्रीय या नृतत्व विज्ञान की कसौटी पर परखने से इस कला-प्रयोजन का अर्थ 'वर्जनाओं से नियंत्रित जीवन-शैली' होता है, किंतु इस लेखक ने परंपरागत कोर-रचना को वस्त्र-चित्रांकन के अलंकरण का मूल तत्व बनाया। 'कोर' वस्तुतः चित्रकला के प्रतीकों की ही अभिव्यंजना होती है जिसमें ज्यामितिक, वानस्पतिक और सांस्कृतिक चिन्हादि समाहित होते हैं। उदाहरण स्वरूप यहाँ दो-तीन कोर दिखलाए जा रहे हैं जो मिथिला चित्रकला के प्रतीक कमल, माछ, शंख और ज्यामितिक चिन्हों की मेल से बने हैं। इन कोरों से सज्जित साड़ियाँ जब बाजार में उतरी तो सुरुचि-संपन्न महिला ग्राहकों में जैसे होड़-सी मच गयी।

किसी चित्र में जैसे प्रसंग और उसकी अभिव्यंजना आकर्षण के मुख्य कारण



होते हैं, उसी प्रकार वस्त्र-चित्रांकन में उसकी डिजाइनिंग प्रमुख होती है। खास कर मिथिला-वस्त्र में, बहुत छोटे स्थान में सूक्ष्म रेखाओं के आरेखन की सुस्पष्टता, आकारों की समरूपता और सफाई बहुत आवश्यक गुण होते हैं जिसके आधार पर उत्पादन के ग्रेड तय होते हैं। इसे ध्यान में रख कर ही डिजाइन-प्रशिक्षण का ढाँचा तय किया गया था।



मिथिला वस्त्र-चित्रांकन के निम्नतम सोपान से शुरू हो कर टेक्सटाइल डिजाइनिंग और फैशन डिजाइनिंग जैसे आधुनिकतम निकायों से गुजरनेवाली इस कला-विधि का परिपथ चित्रांकन के उच्चतम शिखर तक जाता है। इस संपूर्ण कार्य-विधि की परिकल्पना तो एक आंदोलन के तहत हुआ है, किंतु इसका नियमन किसी सैन्य संगठन की तरह पूर्ण सक्रिय और सजग रहते किया जाता है। शिक्षण, उत्पादन और विपणन



की इसकी बहुआयामी व्यवस्था में एक भी इकाई के कमजोर पड़ने पर पूरा उद्योग प्रभावित होता है। आज बिहार की अनगिनत स्त्रियाँ बिहार में और राज्य से बाहर इस उद्योग में संलग्न हैं। देश और विदेशों में फैला इसका बाजार अपार है, किंतु मूलभूत साधन के अभाव में इसके पाँच प्रतिशत बाजार का लाभ भी उठाया नहीं जा सका है। यदि किसी सक्षम संस्थान के रूप में इसे पुनर्गठित किया जाए तो निस्संदेह इसके चमत्कारिक परिणाम होंगे।

किसी लोककला में अकादमिक स्वरूप के विकास से जहाँ एक ओर उस कला में अंतर्निहित गूढ़ दार्शनिक, आध्यात्मिक और समाजशास्त्रीय तत्व भिन्न संस्कृति के लोगों तक संप्रेषणीय हो पाते हैं, वहीं दूसरी ओर, स्वयं उस कला से जुड़े लोगों का समुचित मार्गदर्शन होता है। इस विधि के विकास से बाजार तो विश्व-व्यापी होता ही है, दूसरी ओर, कला-प्रतीकों के गूढ़ार्थ को समझ कर उत्पादक कलाकार उसे बहुप्रयोजनीय बना पाते हैं। सबसे बड़ी बात है कि कला-तत्वों के शिक्षण से एक कलाकार अपनी कला को हर परिस्थिति में बचाए रख पाता है, औद्योगिक विभीषिका उसके कोमल तत्वों को नष्ट नहीं कर पाती है। मिथिला चित्रकला में अकादमिक साधन के विकास से ही मिथिला की वीथियों तक सिमटी यह कला विश्व-व्यापी हो पायी। आज भी इस चित्रविधि में बहुत विकास की जरूरत है जिससे आर्थिक उत्थान का मार्ग और अधिक प्रशस्त होगा।

अमर उजाला पब्लिकेशन्स लि0, नौएडा द्वारा मुद्रित

लोक चित्रों की आधुनिक मधुबनी शैली का विकास 17वीं शताब्दी के आस-पास माना जाता है। पारंपरिक पेंटिग में पौधों की पत्तियों, फलों तथा फूलों से रंग निकालकर कपड़े या कागज के कैनवस पर भरा जाता है। मधुबनी पेंटिंग शैली की विशेषता इसके निर्माण में महिला कलाकारों की मुख्य्य भूमिका है। इन लोक कलाकारों के द्वारा तैयार किया हुआ कोहबर, शिव-पार्वती विवाह, राम-जानकी स्वयंवर, कृष्ण लीला जैसे विषयों पर पेंटिंग में मिथिला संस्कृति की पहचान छिपी है।

मधुबनी पेंटिंग में ज्ञान, दर्शन तथा वैज्ञानिक एवं धार्मिक तथ्यों पर आधारित लोक संस्कृति को मुखरित करने की अद्‌भुत क्षमता है। यह पुस्तक मिथिला लोकचित्रों को बनाने, उसके दर्शन, विशेषताओं का प्रामाणिक दस्तावेज है।

कृष्ण कुमार कश्यप को सन 1963 में फीस ना भर पाने के कारण स्कूल से निकाल दिया गया था । उस समय वे 14 साल के थे। तब उन्होंने अपनी माँ को भूमि पर अरिपन बनाते देखा व समझ गए कि मिथिला के पारंपरिक चित्र मूल ज्यामितिक चिन्ह हैं जो आपस में मिलकर चित्र और अक्षर दोनों बनाते हैं। उन्होंने गरीब निरक्षरों को चित्रों के माध्यम से निशुल्क पढ़ाने का कार्य शुरू किया। सन् 1981 में गोदना-शैली को मुख्य विषय बना कर 'भारती विकास मंच' नाम से संस्था ने काम आरंभ किया, जहाँ लोककला, शिक्षा व उससे आय के गुर सिखाए जाते हैं। **शशिबाला** उस विद्यालय के पहली बैच की छात्रा हैं और वे लेखक की सभी दस पुस्तकों की सहलेखिका हैं।

Cover Image by Varsha Singh Courtesy: fineartamerica.com





राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
NATIONAL BOOK TRUST, INDIA


ISBN 812377356-0
9 788123 773568
19200847